विषय-सूची

त्रिक-निपात (६-१०)

२. द्वितीय पंचाशतक

(६) १. ब्राह्मण वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - १६२
१. दो ब्राह्मण सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - - १६२
२. दो ब्राह्मण सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - १६३
३. अन्य ब्राह्मण सुत्त - - - - - - - - - - - - - - १६४
४. परिव्राजक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - १६५
५. निर्वृत सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १६६
६. पलोक (क्षय) सुत्त - - - - - - - - - - - - - १६७
७. वच्छगोत्त सुत्त - - - - - - - - - - - - - - १६८
८. तिकण्ण सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १७०
९. जाणुस्सोणि सुत्त - - - - - - - - - - - - - - १७४
१०. सङ्गारव सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १७६
(७) २. महा वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - १८१
१. विभिन्न वाद सुत्त - - - - - - - - - - - - - - १८१
२. भय सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - १८५
३. वेनागपुर सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १८८
४. सरभ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - १९१
५. केसमुत्ति सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १९४
६. साळ्ह सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २००
७. कथावस्तु सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २०४
८. अन्यतैर्थिक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - २०७
९. अकुसल-मूल सुत्त - - - - - - - - - - - - - - २०९
१०. उपोसथ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २१३
(८) ३. आनन्द वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - २२२
१. छन्न सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २२२
२. आजीवक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २२४
३. महानाम शाक्य सुत्त - - - - - - - - - - - - - २२६
४. निर्ग्रंथ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २२७
५. परामर्श सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २२९
६. भव सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - - - २३०
७. भव सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - २३१

८. शीलव्रत सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २३२
९. सुगंधि सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २३२
१०. सहस्रचूळ लोकधातु सुत्त - - - - - - - - - - - २३४
(९) ४. श्रमण वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - **२३६**
१. श्रमण सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २३६
२. गर्दभ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २३६
३. क्षेत्र सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २३६
४. वज्जिपुत्र सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २३७
५. शैक्ष सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २३८
६. शिक्षा सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - - २३८
७. शिक्षा सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - २४०
८. शिक्षा सुत्त (तृतीय) - - - - - - - - - - - - - २४१
९. शिक्षात्रय सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - २४२
१०. शिक्षात्रय सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - २४३
११. सङ्खा सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २४४
(१०) ५. नमक वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - **२४७**
१. अत्यावश्यक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २४७
२. प्रविवेक (एकांत) सुत्त - - - - - - - - - - - - - २४८
३. शरद सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २४९
४. परिषद सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २५०
५. आजानीय (श्रेष्ठ घोड़ा) सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - २५१
६. आजानीय सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - २५२
७. आजानीय सुत्त (तृतीय) - - - - - - - - - - - - २५३
८. पोत्थक (मकची केश का बना कपड़ा) सुत्त- - - - - - २५४
९. नमक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २५६
१०. स्वर्णकार (मिट्टी दूर करने वाला) सुत्त - - - - - - - २६०
११. निमित्त सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २६३

२. द्वितीय पंचाशतक

(६) १. ब्राह्मण वर्ग

१. दो ब्राह्मण सुत्त (प्रथम)

५२. एक समय दो ब्राह्मण –जो जरा-जीर्ण थे, वृद्ध थे, बूढ़े थे, जिनकी आयु बहुत थी, जो वयः-प्राप्त थे, जो एक सौ बीस वर्ष के थे – भगवान के पास गये। जाकर भगवान को...एक ओर बैठे उन ब्राह्मणों ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं, जरा-जीर्ण हैं, वृद्ध हैं, बूढ़े हैं, हमारी आयु बहुत है, हम वयः-प्राप्त हैं, हम एक सौ बीस वर्ष के हैं। तो भी हमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्म नहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो । आप गौतम हमें उपदेश दें। आप गौतम हमारा अनुशासन करें जो दीर्घ काल तक हमारे हित और सुख के लिए हो।

"हे ब्राह्मणो! तुम सचमुच जरा-जीर्ण हो, वृद्ध हो, बूढ़े हो, तुम्हारी आयु बहुत है, तुम वयः-प्राप्त हो, तुम एक सौ बीस वर्ष के हो। तो भी तुमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्म नहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो सके। हे ब्राह्मणो! यह संसार जरा, व्याधि तथा मरण द्वारा (खींचकर) ले जाया जाता है। इस प्रकार जरा, व्याधि तथा मरण द्वारा खींचकर ले जाये जाने वाले का संसार में जो यह शरीर, वाणी तथा मन का संयम है वही उस परलोक-प्राप्त व्यक्ति का त्राण है, वही आश्रय-स्थान है, वही द्वीप है, वही शरण-स्थान है, वही सहारा है।"

"उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानि॥

"योध कायेन संयमो, वाचाय उद चेतसा।
तं तस्स पेतस्स सुखाय होति, यं जीवमानो पकरोतिपुञ्ञ"न्ति॥

["जीवन अल्प है। बुढ़ापे द्वारा (खींचकर) ले जाये जाने वाले के लिए कोई शरण स्थान नहीं है। मृत्यु में भय देखकर मनुष्य को चाहिए कि वह सुखदायी पुण्य-कर्म करे।

जो यहां शरीर, वाणी तथा मन का संयम है, तथा जीते-जी वह जो पुण्य कर्म करता है वह उस व्यक्ति के लिए परलोक प्राप्त होने पर सुख का कारण होता है।"]

२. दो ब्राह्मण सुत्त (द्वितीय)

५३. एक समय दो ब्राह्मण –जो जरा-जीर्ण थे, वृद्ध थे, बूढ़े थे, जिन की आयु बहुत थी, जो वयः-प्राप्त थे, जो एक सौ बीस वर्ष के थे – भगवान के पास गये। जाकर भगवान को...एक ओर बैठे उन ब्राह्मणों ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं, जरा-जीर्ण हैं, वृद्ध हैं, बूढ़े हैं, हमारी आयु बहुत है, हम वयः-प्राप्त हैं, हम एक सौ बीस वर्ष के हैं। तो भी हमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्मनहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो । आप गौतम हमें उपदेश दें। आप गौतम हमारा अनुशासन करें जो दीर्घकाल तक हमारे हित और सुख के लिए हो।

"हे ब्राह्मणो! तुम सचमुच जरा-जीर्ण हो, वृद्ध हो, बूढ़े हो, तुम्हारी आयु बहुत है, तुम वयः-प्राप्त हो, तुम एक सौ बीस वर्ष के हो। तो भी तुमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्मनहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो। हे ब्राह्मणो! यह संसार जरा, व्याधि, मरण से जल रहा है। इस प्रकार जरा, व्याधि तथा मरण से आदीप्त (जलते) संसार में जो यह शरीर, वाणी, तथा मन का संयम है वही उस परलोक-प्राप्त व्यक्ति का त्राण है, वही आश्रय-स्थान है, वही द्वीप है, वही शरण-स्थान है, वही सहारा है।"

"आदित्तस्मिं अगारस्मिं, यं नीहरति भाजनं।
तं तस्स होति अत्थाय, नो च यं तत्थ डय्हति॥

"एवं आदित्तो खो लोको, जराय मरणेन च।
नीहरेथेव दानेन, दिन्नं होति सुनीहतं॥

"योध कायेन संयमो, वाचाय उद चेतसा।
तं तस्स पेतस्स सुखाय होति,
यं जीवमानो पकरोति पुञ्ञ"न्ति॥

["घर में आग लगी हो तो जो सामान उस आग में से बचा लिया जाता है, वही काम आता है। जो सामान आग में जल जाता है, वह काम नहीं आता। इसी प्रकार यह संसार जरा तथा मरण से जल रहा है। इसमें से दान देकर जो निकाला जा सके ,निकाल ले। जो दिया उतना ही अच्छी तरह बचाया गया है।

जो यहां शरीर, वाणी तथा मन का संयम है, तथा जीते-जी वह जो पुण्य कर्म करता है वह उस व्यक्ति के लिए परलोक प्राप्त होने पर सुख का कारण होता है।"]

३. अन्य ब्राह्मण सुत्त

५४. एक समय एक ब्राह्मण भगवान के पास गया। जाकर भगवान के साथ... एक ओर बैठे हुए उस ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! 'धर्म सांदृष्टिक है, धर्म सांदृष्टिक है' (जीवन में देखा जानेवाला) सांदृष्टिक है ऐसा कहा जाता है। कहां तक धर्म सांदृष्टिक है, तत्कालफलदायक है, (अकालिक)आओ और देखो कहलाने योग्य है, निर्वाण तक ले जाने वाला है, प्रत्येक विज्ञद्वारा साक्षात करने योग्य है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त, राग से अभिभूत है, राग के वशीभूत है, वह अपने अहित की भी बात सोचता है, दूसरे के अहित की भी बात सोचता है, दोनों के अहित की भी बात सोचता है तथा चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है।

"राग के प्रहीण हो जाने पर न वह अपने अहित की बात सोचता है, न दूसरे के अहित की बात सोचता है, न दोनों के अहित की बात सोचता है तथा न चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से अभिभूत है... वह कायिक-दुष्कर्म करता है,... वाचिक ...मानसिक-दुष्कर्म करता है। राग के प्रहीण होने पर न कायिक-दुष्कर्म करता है... न वाचिक ... न मानसिक ...। हे ब्राह्मण!... जिसका... अपने हित को यथाभूत नहीं जानता है... दूसरे के ... दोनों के हित को...। राग के प्रहीण हो जाने पर अपना हित यथाभूत जानता है... परहित... दोनों का हित यथाभूत जानता है। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्म सांदृष्टिक होता है...।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त, द्वेष से अभिभूत है, द्वेष के वशीभूत है, वह अपने अहित की भी बात सोचता है, दूसरे के अहित की भी बात सोचता है, दोनों के अहित की भी बात सोचता है तथा चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। द्वेष का नाश हो जाने पर न वह अपने अहित की बात सोचता है, न दूसरे के अहित की बात सोचता है, न दोनों के अहित की बात सोचता है तथा न चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है...। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्म सांदृष्टिक होता है...।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त, मोह से अभिभूत है, मोह के वशीभूत है, वह अपने अहित की भी बात सोचता है, दूसरे के अहित की भी बात सोचता है, दोनों के अहित की भी बात सोचता है तथा चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। मोह का नाश हो जाने पर न वह अपने अहित की बात सोचता है, न दूसरे के अहित की बात सोचता है, न दोनों के अहित की बात सोचता है तथा न चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है...। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्म सांदृष्टिक होता है..."।

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

४. परिव्राजक सुत्त

५५. एक समय एक ब्राह्मण परिव्राजक भगवान के पास गया... एक ओर बैठे हुए ब्राह्मण परिव्राजक ने भगवान को यह कहा –"हे गौतम! 'धर्म सांदृष्टिक है, धर्म सांदृष्टिक है' –ऐसा कहा जाता है। कौन-सा गुण होने से धर्म सांदृष्टिक होता है, अकालिक, एहिपस्सिक, ओपनयिक तथा प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात किया जा सकने वाला?"

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से... वह अपने अहित की बात... (पूर्वानुसार) अनुभव करता है। राग का नाश हो जाने पर... अनुभव करता है। राग का नाश हो जाने पर... अनुभव करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से... कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक... मानसिक-दुष्कर्म करता है। राग का नाश होने पर न कायिक-दुष्कर्म करता है, न वाचिक... न मानसिक-दुष्कर्म करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से... वह यथाभूत अपना हित भी नहीं जानता है, यथाभूत दूसरे का हित भी नहीं जानता है, यथाभूत दोनों का भी हित नहीं जानता है। राग का प्रहाण हो जाने पर यथाभूत अपना भी हित

जानता है... दूसरे का... यथाभूत दोनों का भी हित जानता है। इस प्रकार भी ब्राह्मण! धर्म सांदृष्टिक होता है...।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त द्वेष से...

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... वह अपने अहित की बात... अनुभव करता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर... अनुभव करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक ... मानसिक-दुष्कर्म करता है। मोह का प्रहाण होने पर न कायिक-दुष्कर्म करता है, न वाचिक ... न मानसिक-दुष्कर्म करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... वह यथाभूत अपना हित भी नहीं जानता है,... दूसरे का... दोनों का भी यथाभूत हित नहीं जानता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर यथाभूत अपना हित भी जानता है,... दूसरे का... दोनों का...। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्मसांदृष्टिक होता है"।

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

५. निर्वृत सुत्त

५६. एक समय जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया... एक ओर बैठे जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! 'निर्वाण सांदृष्टिक है, निर्वाण सांदृष्टिक है' –ऐसा कहा जाता है। कौन-सा गुण होने से निर्वाण 'सांदृष्टिक' होता है, अकालिक, एहिपस्सिक, ओपनयिक तथा प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात किया जा सकने वाला?

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से... वह अपने अहित की बात... दोनों के अहित की बात... अनुभव करता है। राग का प्रहाण हो जाने पर... न वह अपने अहित... न दोनों के अहित की बात... अनुभव करता है। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी निर्वाण 'सांदृष्टिक' होता है...

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त द्वेष से दूषित है...

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... वह अपने अहित की बात... अनुभव करता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर... न वह अपने अहित की बात... न दोनों के अहित की बात... अनुभव करता है। हे ब्राह्मण! जो इस

संपूर्ण रागक्षय का अनुभव करना है संपूर्ण द्वेष क्षय का संपूर्ण मोहक्षय का अनुभव करना है इस प्रकार भी निर्वाण 'सांदृष्टिक' होता है, अकालिक, एहिपस्सिक ,ओपनयिक तथा प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात किया जा सकनेवाला होता है"।

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

६. पलोक (क्षय) सुत्त

५७. एक समय एक महाशाल ब्राह्मण भगवान के पास गया।... एक ओर बैठे हुए उस महाशाल ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! मैंने बड़े-बूढ़े आचार्य-प्राचार्य, पूर्व के ब्राह्मणों से सुना है कि पहले यह संसार इतना अधिक बसा हुआ था, मानों अवीचि नरक हो; ग्राम, निगम तथा राजधानियों में मनुष्यों की इतनी घनी आबादी थी कि मुर्गा आसानी से एक गांव से दूसरे गांव जा सकता था।

"हे गौतम! इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई दे रही है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं तथा जनपद अजनपद?"

"ब्राह्मण! अब मनुष्य अधर्म-रागानुरक्त हैं, विषम-लोभ के वशीभूत हैं, मिथ्याधर्म से समन्वागत हैं। वे अधर्म-रागानुरक्त होने के कारण, विषम-लोभ के वशीभूत होने के कारण, मिथ्या-धर्म से समन्वागत होने के कारण, तेज शस्त्र लेकर परस्पर एक दूसरे की जान लेते हैं। इससे बहुत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मण! यह भी एक कारण है, यह भी एक प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई दे रही है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं तथा जनपद अजनपद।

"फिर ब्राह्मण! अब मनुष्य अधर्म-रागानुरक्त हैं, विषम-लोभ के वशीभूत हैं, मिथ्याधर्म से समन्वागत हैं। उनके अधर्म-रागानुरक्त होने के कारण, विषम-लोभ के वशीभूत होने के कारण, मिथ्या-धर्म से समन्वागत होने के कारण अच्छी वर्षा नहीं होती। इससे दुर्भिक्ष होता है, फसल खराब हो जाती है, उसमें फफूंदी का रोग लग जाता है, डंठल रह जाते हैं। इससे बहुत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मण, यह भी एक कारण है, यह भी एक प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई दे रही है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं, तथा जनपद अजनपद।

"फिर ब्राह्मण! अब मनुष्य अधर्म-रागानुरक्त हैं, विषम-लोभ के वशीभूत हैं, मिथ्या धर्म के अनुयायी हैं। उनके अधर्म-रागानुरक्त होने के कारण, विषम-लोभ के वशीभूत होने के कारण, मिथ्या-धर्म से समन्वागत होने के कारण यक्ष अधिपति भयानक यक्षों को मनुष्य-पथ पर छोड़ देते हैं। इससे बहुत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मण! यह भी एक कारण है, यह भी एक प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई देती है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं तथा जनपद अजनपद।"

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

७. वच्छगोत्त सुत्त

५८. एक समय वच्छगोत्त परिव्राजक भगवान के पास गया। ...एक ओर बैठे वच्छगोत्त परिव्राजक ने भगवान से कहा –"हे गौतम! मैंने यह सुना है कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि मुझे ही दान देना चाहिए, अन्यों को नहीं; मेरे ही श्रावकों (शिष्यों) को दान देना चाहिए, अन्यों को नहीं; मुझे ही देने से महान फल होता है, अन्यों को देने से महान फल नहीं होता, मेरे ही श्रावकों को देने से महान फल होता है, अन्यों को देने से नहीं। हे गौतम! जो ऐसा कहता है कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि 'मुझे ही दान... देने से नहीं,' क्या वे आप गौतम के कथनानुसार कहने वाले हैं, क्या वे आप गौतम पर मिथ्या आरोप तो नहीं लगाते? क्या वे आपके धर्म की सही-सही व्याख्या करते हैं? इससे आपके सहधर्मी और आपके वाद को मानने वाले आलोच्य (निंदा के पात्र) तो नहीं हो जाते? हम आप गौतम पर मिथ्या आरोपण नहीं करना चाहते।"

"हे वत्स! जो यह कहते हैं कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि मुझे ही दान... देने से नहीं, वे मेरे कथनानुसार कहने वाले नहीं हैं, वे मुझ पर मिथ्या आरोप लगाते हैं। हे वत्स! जो किसी दूसरे को दान देने से रोकता है वह तीन तरह से बाधक होता है, तीन की हानि करने वाला होता है। कौन-से तीन?

"दाता के पुण्य-लाभ में बाधक होता है, प्रतिग्राहक की लाभ-प्राप्ति में बाधक होता है और सबसे पहले अपनी ही हानि, बहुत हानि करने वाला होता है। वत्स! जो किसी दूसरे को दान देने से रोकता है वह इन तीन तरह से बाधक होता है, तीन की हानि करने वाला होता है। वत्स! मेरा तो यह कहना है कि गूथ-कूप वा गंदे गढ़े में भी जो कीड़े रहते हैं उनके लिए भी यदि कोई थाली का

धोवन या प्याले का धोवन फेंक ता है कि इससे उसमें रहने वाले कीड़े जीते रहें, उससे भी, हे वत्स! मैं पुण्य की प्राप्ति कहता हूं। मनुष्यों को दान देने की बात का तो कहना ही क्या!

"किंतु, वत्स! मैं शीलवान को दान देने का महान फल कहता हूं, वैसा दुःशील को देने का नहीं। शीलवान पांच बातों से प्रहीण[1] (रहित) होता है और वह पांच बातों से समन्वागत (युक्त) होता है।

"किन पंच बातों से वे प्रहीण होते हैं?

"उसका कामच्छंद प्रहीण होता है, व्यापाद (क्रोध) प्रहीण होता है, थिनमिद्ध (आलस्य) प्रहीण होता है, उद्धच्चकुक्कुच्च(उद्धतपन तथा अनुताप) प्रहीण होता है, विचिकित्सा (संदेह) प्रहीण होता है। ये पांच बातें प्रहीण होती हैं।

"किन पंच बातों से वह समन्वागत होता है?

"अशैक्ष शील-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष समाधि-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष्य प्रज्ञा-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष्य विमुक्ति-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष्य विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-स्कंध से समन्वागत होता है। इन पांच बातों से वह समन्वागत होता है।

"ऊपर की पांच बातों से प्रहीण तथा इन पांच बातों से समन्वागत को जो दान दिया जाता है, उसका महान फल होता है – यह मैं कहता हूं।"

"इति कण्हासु सेतासु, रोहिणीसु हरीसु वा।
कम्मासासु सरूपासु, गोसु पारेवतासु वा॥

"यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति पुङ्गवो।
धोरय्हो बलसम्पन्नो, कल्याणजवनिक्कमो।
तमेव भारे युञ्जन्ति, नास्स वण्णं परिक्खरे॥

"एवमेवं मनुस्सेसु, यस्मिं कस्मिञ्चि जातिये।
खत्तिये ब्राह्मणे वेस्से, सुद्दे चण्डालपुक्कुसे॥

"यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति सुब्बतो।
धम्मट्ठो सीलसम्पन्नो, सच्चवादी हिरीमनो॥

"पहीनजातिमरणो, ब्रह्मचरियस्स केवली।
पन्नभारो विसंयुत्तो, कतकिच्चो अनासवो॥

१ यहां पालि में **'पहीन'** शब्द है। इसका अर्थ 'प्रहीण', 'रहित', 'त्यक्त', 'नष्ट' होता है।

"पारगू सब्बधम्मानं, अनुपादाय निब्बुतो।
तस्मिंयेव विरजे खेत्ते, विपुला होति दक्खिणा॥

"बाला च अविजानन्ता, दुम्मेधा अस्सुताविनो।
बहिद्धा देन्ति दानानि, न हि सन्ते उपासरे॥

"ये च सन्ते उपासन्ति, सप्पञ्ञे धीरसम्मते।
सद्धा च नेसं सुगते, मूलजाता पतिट्ठिता॥

"देवलोकञ्च ते यन्ति, कुले वा इध जायरे।
अनुपुब्बेन निब्बानं, अधिगच्छन्ति पण्डिता"ति॥

["चाहे कृष्णवर्ण की हों, चाहे श्वेत-वर्ण की हों, चाहे लोहितवर्ण की हों, चाहे भूरे वर्ण की हों, चाहे चितकबरे रंग की हों, चाहे अपने बछड़ों जैसी हों और चाहे कबूतरी रंग की हों –इनमें से जिस किसी की कोख से भी संयत, भार ढो सकने वाला, शक्तिसंपन्न, अच्छी गति वाला वृषभ जन्म ग्रहण करता है, उसे ही भार ढोने के लिए जोत दिया जाता है, उसके वर्ण की परीक्षा नहीं की जाती। इसी प्रकार मनुष्यों में भी –जिस-तिस जाति में –चाहे क्षत्रिय जाति में, चाहे ब्राह्मण जाति में, चाहे वैश्य जाति में, चाहे शूद्र जाति में, चाहे चंडाल जाति में और चाहे पुक्कुस (मैला साफ करने वाला) जाति में, जो कोई भी संयत, सुव्रत, धर्मस्थित, शीलसंपन्न, सत्यवादी, पापभीरु, जाति-मरण के बंधनों से मुक्त, ब्रह्मचर्य में पूर्णता प्राप्त, भारविहीन, बंधनमुक्त, कृतकृत्य, आस्रव-रहित, सब धर्मों में पारंगत, उपादान-स्कंधों के बंधन से मुक्त, तथा निर्वाणप्राप्त जन्म ग्रहण करता है उसी रज-रहित (पुण्य-) क्षेत्र में दान देने से दक्षिणा विपुल फलदायी होती है। जो मूर्ख हैं, जो अजानकार हैं, जो दुर्बुद्धि हैं, जो अज्ञानी हैं वे इनसे बाहर लोगों को दान देते हैं, वे शांत जनों की सेवा नहीं करते। जो पंडितों द्वारा मान्य, प्रज्ञावान, शांत जनों की सेवा करते हैं, उनकी श्रद्धा सुगत (बुद्ध) के प्रति मूलरूप से प्रतिष्ठित है। वे देव-लोक को प्राप्त होते हैं तथा यहां (श्रेष्ठ) कुल में जन्म लेते हैं। ऐसे पंडितजन क्रमशः निर्वाण को प्राप्त होते हैं।"]

८. तिकण्ण सुत्त

५९. एक समय तिकण्ण ब्राह्मण भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान के साथ...। एक ओर बैठे हुए तिकण्ण ब्राह्मण ने भगवान के सामने त्रैविद्य ब्राह्मणों का गुणानुवाद करना आरंभ किया –'त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसे होते हैं, त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसे होते हैं!'

भगवान ने पूछा –"ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की किस प्रकार व्याख्या करते हैं?"

"यहां, हे गौतम! त्रैविद्य ब्राह्मण माता तथा पिता दोनों की ओर से सुजन्मा होता है, सात पीढ़ियों तक शुद्ध होता है, उस पर जातिवाद की दृष्टि से कोई दोष नहीं लगा होता, कोई आक्षेप नहीं लगा होता, वह अध्यायक होता है, वह मंत्रधर होता है, वह निघंटु-केटुभसहित तीनों वेदों का –जिनके अक्षर आदि (शिक्षा, निरुक्त आदि) प्रभेद हैं –पारंगत होता है तथा इतिहास जिनमें पांचवां माना जाता है, उसका भी पारंगत होता है। वह पदों का जानकार होता है, व्याख्याकार होता है तथा लोकायत का और महापुरुषलक्षण-शास्त्र का संपूर्ण जानकार होता है। हे गौतम! इस प्रकार ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की व्याख्या करते हैं।"

"हे ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की जो व्याख्या करते हैं वह एक बात है, किंतु आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य होने की व्याख्या बिल्कुल दूसरी है।"

"हे गौतम! आर्य-विनय में त्रैविद्य कैसे होता है? अच्छा हो आप गौतम मुझे वैसा धर्मोपदेश दें जैसे आर्य-विनय में त्रैविद्य होता है।"

"तो ब्राह्मण, सुन! अच्छी तरह मन में धारण कर। कहता हूं।"

"बहुत अच्छा!" कह तिकण्ण ब्राह्मण भगवान की बात सुनने लगा। भगवान ने ऐसा कहा –

"यहां, हे ब्राह्मण! भिक्षु कामभोगों से अलग, पृथक हो, अकुशल-धर्मों से पृथक हो, सवितर्क, सविचार, एकांतजन्य, प्रीतिसुख-युक्त प्रथम-ध्यानलाभी हो विहार करता है; वितर्क-विचारों का उपशमन होने के अनंतर, आंतरिक प्रसाद-युक्त, चित्त की एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार-रहित, समाधिजन्य प्रीतिसुख-युक्त द्वितीय ध्यान का लाभी हो विहार करता है; प्रीति से भी वैराग्य-युक्त हो, उपेक्षावान बन विहार करता है, स्मृतिमान हो, संप्रज्ञानी हो, काया से सुखद संवेदनाओं का अनुभव करता है, जिसके बारे में आर्य-जन कहते हैं कि 'उपेक्षावान है, स्मृतिमान है, सुखपूर्वक विहार करने वाला है', ऐसा तृतीय ध्यान प्राप्त कर विहार करता है; सुख और दुःख दोनों का प्रहाण कर पूर्वस्थित सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्तंगमन होने से, अदुःख-असुख रूप उपेक्षा-स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान लाभी हो विहार करता है।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्त कर लेने पर, गढ़नीय

(सुघट्य, कमनीय), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे पूर्वजन्म को अनुस्मरण करने की ओर झुकाता है। वह अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है – जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन जन्म भी, चार जन्म भी, पांच जन्म भी, दस जन्म भी, बीस जन्म भी, तीस जन्म भी, चालीस जन्म भी, पचास जन्म भी, सौ जन्म भी, हजार जन्म भी, लाख जन्म भी, अनेक संवर्तकल्प, अनेक विवर्तकल्प, अनेक संवर्त-विवर्तकल्प –'मैं अमुक स्थान पर था, ऐसा नाम था, ऐसा गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा आहार था, उस प्रकार का सुख-दुःख भोगा था, इतनी आयु पर्यंत रहा, फिर वहां से च्युत होकर अमुक जगह उत्पन्न हुआ। वहां भी ऐसा नाम था, ऐसा गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा आहार था, ऐसा सुख-दुःख भोगा था, इतनी आयु पर्यंत रहा, फिर वहां से च्युत होकर यहां उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार सविस्तार से विशिष्टताओं सहित अनेक प्रकार से पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की प्रथम विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे प्राणियों की च्युति तथा उत्पत्ति जानने के लिए झुकाता है। वह दिव्य, विशुद्ध, अलौकिक[1] चक्षु से च्युत होते तथा उत्पन्न होते प्राणियों को देखता है। वह निकृष्ट-श्रेष्ठ, सुवर्ण-दुर्वर्ण, कर्मानुसार सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त प्राणियों को जानता है – 'ये प्राणी कायिक-दुष्कर्म से युक्त हैं, वाचिक-दुष्कर्म से युक्त हैं, मानसिक-दुष्कर्म से युक्त हैं, आर्यों (श्रेष्ठ जनों) के निंदक हैं, मिथ्या-दृष्टि वाले हैं तथा मिथ्या-कर्मी हैं, वे शरीर छूटने पर, मरने के बाद, अपायगति प्राप्तकर नरक में उत्पन्न हुए हैं। अथवा ये प्राणी कायिक शुभ-कर्म से युक्त हैं, वाचिक शुभ-कर्म से युक्त हैं, मानसिक शुभ-कर्म से युक्त हैं, आर्यों (श्रेष्ठ-जनों) के प्रशंसक हैं, सम्यक-दृष्टि वाले हैं तथा सम्यक-कर्मी हैं, वे शरीर छूटने पर मरने के बाद, सुगति को प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार वह दिव्य, विशुद्ध, अलौकिक चक्षु से च्युत होते तथा उत्पन्न होते प्राणियों को देखता है। वह

१ पालि के **'अतिक्कन्त मानुसकेन'** (बु. सं. अतिक्रान्त मानुष्यक) का अर्थ 'अलौकिक' करना ठीक होगा ।

निकृष्ट-श्रेष्ठ, सुवर्ण, दुर्वर्ण सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त प्राणियों को जानता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की दूसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्त कर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य, कमनीय), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान की ओर झुकाता है। 'यह दुःख है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-निरोध है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे वह यथाभूत जानता है। 'ये आस्रव हैं', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह आस्रव-समुदय है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह आस्रव-निरोध है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह आस्रव-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे वह यथाभूत जानता है। उसके इस प्रकार जानते हुए का, इस प्रकार देखते हुए का चित्त कामास्रव से विमुक्त हो जाता है, भवास्रव से भी विमुक्त हो जाता है, अविद्यास्रव से भी विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर, 'विमुक्त हूं', यह ज्ञान होता है। वह यह यथाभूत जानता है –'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, अब यहां जन्म लेने का कुछ भी कारण नहीं रहा।' यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की प्राप्त की हुई तीसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"अनुच्चावचसीलस्स, निपकस्स च झायिनो।
चित्तं यस्स वसीभूतं, एकग्गं सुसमाहितं॥

"तं वे तमोनुदं धीरं, तेविज्जं मच्चुहायिनं।
हितं देवमनुस्सानं, आहु सब्बप्पहायिनं॥

"तीहि विज्जाहि सम्पन्नं, असम्मूळ्हविहारिनं।
बुद्धं अन्तिमदेहिनं, तं नमस्सन्ति गोतमं॥

"पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥

"एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो।
तमहं वदामि तेविज्जं, नाञ्ञं लपितलापन"न्ति॥

["जिसका शील डांवाडोल नहीं है, जो दक्ष है, जो ध्यानी है, जिसका चित्त वश में है, जो एकाग्र है, जो खूब समाहित है, उस अंधकार-नाशक को, धैर्यवान को, त्रैविद्य को, मृत्युंजयी को, सर्वस्वत्यागी को देव-मनुष्यों का हित करनेवाला कहा गया है। जो तीन विद्याओं से युक्त है, जो ज्ञानयुक्त विहरता है, जो अंतिम देहधारी है, जो बुद्ध है, उस गौतम को (लोग) नमस्कार करते हैं। जो पूर्वजन्मों को जानता है, जो स्वर्ग-नरक को देखता है, जिसने जन्म के क्षय को प्राप्त किया है, जो अभिज्ञाप्राप्त है, जो मुनि है, वह ब्राह्मण (श्रेष्ठ-पुरुष) इन तीन विद्याओं से त्रैविद्य होता है। मैं उसे ही त्रैविद्य कहता हूं, किसी दूसरे प्रलापी को नहीं।"]

"इसी प्रकार हे ब्राह्मण! आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य होता है।

"हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य दूसरी तरह का होता है तथा आर्य-विनय में त्रैविद्य दूसरी तरह का। हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य इस आर्य-विनय के त्रैविद्य की तुलना में सोलह में से एक कला के भी बराबर नहीं।

"हे गौतम! सुंदर है... आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

९. जाणुस्सोणि सुत्त

६०. एक समय जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया। ...एक ओर बैठे हुए जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान से कहा –

"हे गौतम! जिसके यहां यज्ञ हो, श्राद्ध हो, थाली-पाक[१] हो, दातव्य[२] हो, उसे त्रैविद्य ब्राह्मणों को ही दान देना चाहिए।"

"ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की कैसी व्याख्या करते हैं?"

"हे गौतम! त्रैविद्य ब्राह्मण माता तथा पिता दोनों की ओर से सुजन्मा होता है, सात पीढ़ियों तक शुद्ध होता है, उस पर जातिवाद की दृष्टि से कोई दोष नहीं लगा होता, कोई आक्षेप नहीं लगा होता, वह अध्यायक होता है, वह मंत्रधर होता है, वह निघंटु-केटुभ सहित तीनों वेदों का –जिनके अक्षर आदि प्रभेद हैं –पारंगत होता है तथा इतिहास जिनमें पांचवां माना जाता है, उसका

१ पालि शब्द **'थालिपाक'** का अर्थ दूध में पकाया गया जौ या चावल होता है।

२ पालि शब्द **'देयधम्म'** के अन्तर्गत – चीवर, पिण्डपात (भोजन) सेनासन (शयनासन) गिलानपच्चय भेसज्ज परिक्खार (रोगी का पथ्य और दवा) अन्न, पान, वत्थ (वस्त्र) यान (सवारी) माला, गंध, विलेपन (उबटन) सेय्या (शय्या) आवसथ (निवास-स्थान) और पदीपेय्य (प्रदीप-सामग्री) आते हैं।

भी पारंगत होता है। वह पदों का जानकार होता है, व्याख्याकार होता है तथा लोकायत का और महापुरुषलक्षण शास्त्र का संपूर्ण जानकार होता है। हे गौतम! इस प्रकार ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की व्याख्या करते हैं।"

"हे ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की व्याख्या दूसरी तरह से करते हैं, किंतु आर्य-विनय(सद्धर्म) में त्रैविद्य अन्य प्रकार से होता है।"

"हे गौतम! आर्य-विनय में त्रैविद्य कैसे होता है? अच्छा हो आप गौतम मुझे वैसा धर्मोपदेश दें जैसे आर्य-विनय में त्रैविद्य होता है।"

"तो ब्राह्मण, सुन! अच्छी तरह मन में धारण कर। कहता हूं।"

"बहुत अच्छा!" कह जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान की बात सुनने लगा। भगवान ने ऐसा कहा –

"हे ब्राह्मण!" भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान लाभी हो विहरता है।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे पूर्वजन्म-स्मरण की ओर झुकाता है। वह अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है –जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी... इस प्रकार सविस्तार से विशिष्टताओं सहित अनेक प्रकार से पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करनेवाले की प्रथम विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे प्राणियों की च्युति तथा उत्पत्ति के ज्ञान की ओर झुकाता है। वह दिव्य, विशुद्ध, अलौकिक चक्षु से... प्राणियों को जानता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करनेवाले की दूसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्त कर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान की ओर झुकाता है। 'यह दुःख है', इसे वह यथाभूत जानता है। 'यह

दुःख-समुदय है', इसे वह यथाभूत जानता है। 'यह दुःख-निरोध है', इसे वह यथाभूत जान लेता है। 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे वह यथाभूत जानता है। इस प्रकार जानते हुए, इस प्रकार देखते हुए का चित्त कामास्रव से विमुक्त हो जाता है, भवास्रव से भी विमुक्त हो जाता है, अविद्यास्रव से भी विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर 'विमुक्त हूं', यह ज्ञान होता है। वह यह यथाभूत जानता है –'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, अब यहां जन्म लेने का कुछ भी कारण नहीं रहा।' यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करनेवाले की तीसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"यो सीलब्बतसम्पन्नो, पहितत्तो समाहितो।
चित्तं यस्स वसीभूतं, एकग्गं सुसमाहितं॥

"पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥

"एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो।
तमहं वदामि तेविज्जं, नाञ्ञं लपितलापन"न्ति॥

["जो वह शील-व्रत से युक्त है, जो दृढ़ संकल्प वाला है, जो समाहित है, जिसका चित्त उसके वश में है, जो एकाग्र है, जो खूब समाहित है, जो पूर्वजन्म को जानता है, जो स्वर्ग-नरक को देखता है, जिसने जन्म के क्षय को प्राप्त किया है, जो अभिज्ञाप्राप्त है, जो मुनि है, वह ब्राह्मण (श्रेष्ठ-पुरुष) इन तीन विद्याओं से त्रैविद्य होता है। मैं उसे ही त्रैविद्य कहता हूं, किसी दूसरे प्रलापी को नहीं।"]

"इस प्रकार हे ब्राह्मण! आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य होता है।"

"हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य दूसरी तरह का होता है तथा आर्य-विनय में त्रैविद्य दूसरी तरह का। हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य इस आर्य-विनय के त्रैविद्य की तुलना में सोलह में से एक कला के भी बराबर नहीं।

"हे गौतम! सुंदर है... आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

१०. सङ्गारव सुत्त

६१. एक समय सङ्गारव ब्राह्मण भगवान के पास गया... एक ओर बैठे सङ्गारव ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं। हम यज्ञ करते भी हैं और करवाते भी हैं। हे गौतम! जो यज्ञ करता है तथा जो यज्ञ करवाता है, वे सभी ऐसे पुण्य-मार्ग का अनुगमन करते हैं जो अनेकों के लिए होता है अर्थात यह यज्ञ का करना कराना (अनेकों के लिए होता है)। किंतु हे गौतम! यह जो जिस-तिस कुल से, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं, वे तो अकेले ही अपना दमन करते हैं, अकेले ही अपना शमन करते हैं, तथा अकेले ही परिनिर्वाण (शांति) को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यह जो प्रव्रजित होना है यह अकेले के लिए पुण्य-मार्ग है यह अकेले के लिए पुण्य-मार्ग है।"

"तो ब्राह्मण! तुझसे ही प्रतिप्रश्न करता हूं, जैसा तुझे ठीक लगे वैसा कह। हे ब्राह्मण! बता तू क्या मानता है? यहां इस संसार में तथागत जन्म ग्रहण करते हैं, अर्हत, सम्यक संबुद्ध, विद्या तथा आचरण से युक्त, सुगत, लोकज्ञ, अनुत्तर, दमनीय पुरुषों के सारथी, देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध, भगवान। वे ऐसा कहते हैं – 'आओ, यह मार्ग है, यह प्रतिपदा है जिस पर प्रतिपन्न (आरूढ़) होकर मैं स्वयं ब्रह्मचर्य जीवन में ओत-प्रोत अनुत्तर (श्रेष्ठ) निर्वाण को साक्षात करके कहता हूं। आओ, तुम भी वैसे ही चलो, जैसे आचरण करने से तुम भी अनुत्तर ब्रह्मचर्य-गत अभिज्ञा को स्वयं साक्षात कर विहार करोगे।' इस प्रकार शास्ता इस धर्म की देशना करते हैं और दूसरे तदनुसार आचरण करते हैं। वे अनेक सौ भी होते हैं, अनेक सहस्र भी होते हैं तथा अनेक लाख भी होते हैं। तो ब्राह्मण! तुम क्या मानते हो? ऐसा होने पर जो यह प्रव्रज्या-पथ है, क्या यह एक से संबंध रखने वाला पुण्य-पथ है अथवा अनेक से संबंध रखने वाला?"

"ऐसा होने पर तो, हे गौतम! यह जो प्रव्रज्या-पथ है, यह अनेक से संबंध रखने वाला पुण्य-पथ होता है।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा – "ब्राह्मण! इन दो मार्गों में से कौन-सा मार्ग तुझे अधिक कम-खर्चीला, अधिक कम-झंझटिया तथा महान फलवाला, महान परिणाम वाला मालूम देता है?"

ऐसा कहने पर सङ्गारव ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा – "जैसे आप गौतम वैसे आप आनन्द हैं, आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं, आप दोनों ही मेरी प्रशंसा के पात्र हैं।"

दूसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा – "ब्राह्मण! मैं तुझ से यह नहीं पूछता हूं कि कौन तेरे पूज्य हैं अथवा कौन तेरी प्रशंसा के पात्र हैं। ब्राह्मण! मैं तो तुझ से पूछता हूं कि इन दो मार्गों में कौन-सा

मार्ग तुझे अधिक कम-खर्चीला, अधिक कम-झंझटी तथा महान फल वाला, महान परिणाम वाला मालूम देता है?"

दूसरी बार भी सङ्गारव ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –"जैसे आप गौतम वैसे आप आनन्द हैं, आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं, आप दोनों ही मेरी प्रशंसा के पात्र हैं।"

तीसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा – "ब्राह्मण! मैं तुझ से यह नहीं पूछता हूं कि कौन तेरे पूज्य हैं अथवा कौन तेरी प्रशंसा के पात्र हैं। ब्राह्मण! मैं तो तुझ से यह पूछता हूं कि इन दो मार्गों में कौन-सा मार्ग तुझे अधिक कम-खर्चीला, अधिक कम-झंझटी तथा महान फल वाला, महान परिणाम वाला मालूम देता है?"

तीसरी बार भी सङ्गारव ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा – "जैसे आप गौतम वैसे आप आनन्द हैं, आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं, आप दोनों ही मेरी प्रशंसा के पात्र हैं।"

उस समय भगवान के मन में यह हुआ – तीसरी बार भी आनन्द द्वारा समुचित प्रश्न पूछे जाने पर सङ्गारव ब्राह्मण उससे कतराता ही है, प्रश्न का उत्तर नहीं देता। मैं ही उससे बात करूं।

तब भगवान ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा –"ब्राह्मण! आज राजा के अंत:पुर में, राज्य-परिषद में इकट्ठे हुए लोगों में क्या बातचीत चली थी?"

"हे गौतम! आज राजा के अंत:पुर में, राज्य-परिषद में इकट्ठे हुए लोगों में यह बातचीत चली थी कि पहले भिक्षुओं की संख्या थोड़ी थी किंतु उनमें से बहुत से असाधारण मनुष्य-धर्म अथवा ऋद्धि-बल का प्रदर्शन करते थे; आज भिक्षुओं की संख्या अधिक है किंतु उनमें से थोड़े ही ऐसा करते हैं। हे गौतम! आज राजा के अंत:पुर में, राज्य-परिषद में इकट्ठे हुए लोगों में यह बातचीत चली थी।"

"ब्राह्मण! ये तीन प्रातिहार्य (असाधारण कृतियां) हैं। कौन-से तीन? ऋद्धि-प्रातिहार्य, आदेशना-प्रातिहार्य तथा अनुशासनी-प्रातिहार्य।

"ब्राह्मण! ऋद्धि-प्रातिहार्य किसे कहते हैं?

"यहां, ब्राह्मण! कोई-कोई अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता है – 'एक होकर भी अनेक हो जाता है, अनेक होकर भी एक हो जाता है, प्रकट हो जाता है, अदृश्य हो जाता है, दीवार के पार, प्राकार के पार, पर्वत के पार उन्हें छूता हुआ चला जाता है मानो जैसे आकाश में; पृथ्वी पर भी

डूबता-उतराता है मानो जैसे पानी में; पानी के भी ऊपर-ऊपर चलता है मानो जैसे पृथ्वी पर; आकाश में भी पालथी मारकर जाता है मानो जैसे कोई पक्षी हो, इस प्रकार का ऋद्धिमान, इस प्रकार के महाप्रतापी चंद्र-सूर्य को भी हाथ से छूता है, ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता है।' हे ब्राह्मण! यह ऋद्धि-प्रातिहार्य कहलाता है।

"ब्राह्मण! आदेशना-प्रातिहार्य किसे कहते हैं?

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई निमित्त (लक्षण) देखकर बताता है –'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा मन इस प्रकार का है, तुम्हारा चित्त ऐसा है।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता।

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई निमित्त देखकर नहीं कहता, बल्कि मनुष्यों, अमनुष्यों अथवा देवताओं का शब्द सुनकर कहता है –'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा मन इस प्रकार का है, तुम्हारा चित्त ऐसा है।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता।

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई न निमित्त देखकर कहता है, न मनुष्यों, अमनुष्यों अथवा देवताओं का शब्द सुनकर कहता है, बल्कि वितर्क करके, विचार करके वितर्क से उत्पन्न शब्द सुनकर कहता है –'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा मन इस प्रकार का है, तुम्हारा चित्त ऐसा है।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता।

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई न निमित्त देखकर कहता है, न मनुष्यों, अमनुष्यों अथवा देवताओं का शब्द सुनकर कहता है, न वितर्क करके, विचार करके वितर्क से उत्पन्न शब्द सुनकर कहता है, बल्कि वितर्क-रहित, विचार-रहित समाधि-प्राप्त चित्त से चित्त का स्पर्श करके अच्छी तरह जानता है –'जिस प्रकार इस समय इनके मन का संस्कार चल रहा है, इसके बाद यह महाशय इस प्रकार का वितर्क करेंगे।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता। ब्राह्मण! यह आदेशना-प्रातिहार्य कहलाता है।

"ब्राह्मण! अनुशासनी-प्रातिहार्य किसे कहते हैं?

"यहां, ब्राह्मण! कोई-कोई ऐसा अनुशासन करता है –'ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क मत करो, मन में ऐसा विचार करो, मन में ऐसा विचार मत करो, इसको छोड़ो, इसको मनमें धारण कर विचरो।'

"ब्राह्मण! इसे अनुशासनी-प्रातिहार्य कहते हैं। ब्राह्मण, ये तीन प्रातिहार्य हैं।

"ब्राह्मण! इन तीन प्रातिहार्यों में तुझे कौन-सा प्रातिहार्य सुंदरतर तथा श्रेष्ठतर लगता है?"

"हे गौतम! इनमें से जो यह एक प्रातिहार्य है कि कोई-कोईअनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता है... ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता है – हे गौतम! इस प्रातिहार्य को जो करता है वही अनुभव करता है, जो करता है उसी को वह होता है। हे गौतम! यह प्रातिहार्य तो मुझे माया-सदृश लगता है। हे गौतम! यह भी जो एक प्रातिहार्य है कि कोई-कोईनिमित्त देखकर बताता है... देवताओं का शब्द सुनकर...वितर्क से उत्पन्न शब्द सुनकर...चित्त से चित्त का स्पर्श करके जानता है... हे गौतम! इस प्रातिहार्य को भी जो करता है वही अनुभव करता है, जो करता है उसी को वह होता है। हे गौतम! यह प्रातिहार्य भी मुझे माया-सदृश ही लगता है। लेकिन हे गौतम! यह जो एक प्रातिहार्य है कि कोई-कोईऐसा अनुशासन करता है... मन में धारण कर विचरो; हे गौतम! इन तीन प्रातिहार्यों में मुझे यही एक प्रातिहार्य सुंदरतर तथा श्रेष्ठतर लगता है।

"हे गौतम! आश्चर्य है! हे गौतम! अद्भुत है कि आप गौतम ने कैसी सुभाषित वाणी कही है। हम आप गौतम को इन तीनों प्रातिहार्यों से युक्त समझते हैं। आप गौतम ही अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करते हैं... ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाते हैं। आप गौतम ही वितर्क-रहित, विचार-रहित समाधि-प्राप्त चित्त से चित्त का स्पर्श करके जानते हैं कि जिस प्रकार इस समय इनका मन-संस्कार चल रहा है, इसके बाद यह महाशय इस प्रकार का वितर्क करेंगे। आप गौतम ही ऐसा अनुशासन करते हैं कि ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क मत करो, मन में ऐसा विचार करो, मन में ऐसा विचार मत करो, इसको छोड़ो, इसे मनमें धारण कर विहरो।"

"निश्चय से ब्राह्मण! मैंने तुझे (अपने गुणों के) समीप लाकर ही बात कही है। लेकिन अब मैं (स्पष्ट रूप से) व्याख्या करता हूं। ब्राह्मण! मैं ही अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूं... ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता हूं। मैं ही ब्राह्मण! वितर्क-रहित, विचार-रहित समाधि-प्राप्त चित्त से चित्त का स्पर्श करके जानता हूं कि जिस प्रकार इस समय इनका मन-संस्कार चल रहा है इसके बाद यह महाशय इस प्रकार का वितर्क करेंगे। हे ब्राह्मण! मैं ही ऐसा अनुशासन करता हूं कि ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क मत करो, मन में ऐसा विचार करो, मन में ऐसा विचार मत करो, इसको छोड़ो, इसे मन में धारण कर विहरो।"

"हे गौतम! क्या आप गौतम के अतिरिक्त कोई दूसरा एक भिक्षु भी ऐसा है जो इन तीनों प्रातिहार्यों से संपन्न है?"

"हे ब्राह्मण! न केवल एक सौ, न दो सौ, न तीन सौ, न चार सौ, न पांच सौ बल्कि इससे भी अधिक ऐसे भिक्षु होंगे जो इन प्रातिहार्यों से संपन्न हों।"

"हे गौतम! इस समय वे भिक्षु कहां विहार करते हैं?"

"ब्राह्मण! इसी भिक्षु-संघ में।"

"सुंदर गौतम! बहुत सुंदर गौतम! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं आप गौतम, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

(७) २. महा वर्ग

१. विभिन्न वाद सुत्त

६२. "भिक्षुओ, ये तीन, तैर्थिकों के ऐसे मत हैं जो पंडितों द्वारा कड़ाई से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, परंपरा के अनुसार जहां कहीं भी जाकर रुकते हैं वहां अकर्मण्यता पर ही जाकर रुकते हैं। कौन से तीन?

"भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप अनुभव करता है।

"भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब ईश्वर-निर्माण के कारण अनुभव करता है।

"भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के अनुभव करता है।

"भिक्षुओ, जिन श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप अनुभव करता है, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हूं – 'आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई

आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप अनुभव करता है?'

"मेरे ऐसे पूछने पर वे 'हां' उत्तर देते हैं।

"तब उनसे मैं कहता हूं – 'तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी चोरी करने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी अब्रह्मचारी होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी झूठ बोलने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी चुगलखोर होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी कठोर बोलने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी व्यर्थ बकवास करने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी लोभी होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी क्रोधी होते हैं, तथा पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूपआदमी मिथ्या-दृष्टि वाले होते हैं।

'तो भिक्षुओ, इस प्रकार वे जो पूर्व-कर्म को ही सारभूत कारण मानने वाले हैं उनके मन में न तो इच्छा ही जगती है और न वे प्रयत्न ही करते हैं और न इस काम को करने की या उस काम को न करने की आवश्यकता ही समझते हैं। तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती। तो आपको "श्रमण" कैसे कहा जा सकता है क्योंकि आप अनारक्षित हैं और आपकी स्मृति नष्ट हो गयी है। अर्थात, आपकी इंद्रियां असंयत हैं और आप बिल्कुल स्मृतिमान नहीं हैं।'

"भिक्षुओ, इस प्रकार का मत, इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले श्रमण-ब्राह्मणों पर यह मेरा प्रथम उचित (तर्कसंगत) दोषारोपण है ।

"भिक्षुओ, जिन श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब ईश्वर-निर्माण के कारण अनुभव करता है, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हूं – 'आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब ईश्वर-निर्माण के फलस्वरूपअनुभव करता है?'

"मेरे ऐसा पूछने पर वे 'हां' उत्तर देते हैं।

"तब उनसे मैं कहता हूं – 'तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार ईश्वर-निर्माण के ही फलस्वरूप आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं... ईश्वर-निर्माण के ही फलस्वरूप आदमी मिथ्या-दृष्टि वाले होते हैं। भिक्षुओ,

इस प्रकार वह जो ईश्वर-निर्माण को ही सारभूत कारण मानने वाले हैं उनके मन में न तो इच्छा ही जगती है और न वे प्रयत्न ही करते हैं और न इस काम को करने की या उस काम को न करने की आवश्यकता ही समझते हैं तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती। तो आपको "श्रमण" कैसे कहा जा सकता है क्योंकि आप अनारक्षित हैं और आपकी स्मृति नष्ट हो गयी है। अर्थात, आपकी इंद्रियां असंयत हैं और आप बिल्कुल स्मृतिमान नहीं हैं।'

"भिक्षुओ, इस प्रकार का मत, इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले श्रमण-ब्राह्मणों पर यह मेरा दूसरा उचित (तर्कसंगत) दोषारोपण है।

"भिक्षुओ, जिन श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के अनुभव करता है, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हूं –'आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के करता है?

"मेरे ऐसा पूछने पर वे 'हां' उत्तर देते हैं।

"तब मैं उनसे कहता हूं –'तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं... बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी मिथ्या-दृष्टि वाले होते हैं। भिक्षुओ, जो इस अहेतुवाद, इस अकारणवाद को ही सारभूत कारण मानने वाले हैं उनके मन में न तो इच्छा ही जगती है और न वे प्रयत्न ही करते हैं और न इस काम को करने की या उस काम को न करने की आवश्यकता ही समझते हैं। तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती। तो आपको "श्रमण" कैसे कहा जा सकता है क्योंकि आप अनारक्षित हैं और आपकी स्मृति नष्ट हो गयी है। अर्थात, आपकी इंद्रियां असंयत हैं और आप बिल्कुल स्मृतिमान नहीं हैं।'

"भिक्षुओ, इस प्रकार का मत, इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले श्रमण-ब्राह्मणों पर यह मेरा तीसरा उचित (तर्कसंगत) दोषारोपण है।

"भिक्षुओ, ये तीन, तैर्थिकों के ऐसे मत हैं, जो पंडितों द्वारा कड़ाई से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, परंपरा के अनुसार जहां कहीं भी जाकर रुकते हैं, वहां अकर्मण्यता पर ही जाकर रुकते हैं।

"भिक्षुओ, मैंने इस धर्म का उपदेश दिया है जो विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दोषारोपित नहीं है, जो संक्लिष्ट नहीं है, तथा जो परिशुद्ध है। भिक्षुओ, मैंने किस धर्म का उपदेश दिया है जो विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दोषारोपित नहीं है, जो संक्लिष्ट नहीं है तथा जो परिशुद्ध है?

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि छः धातु हैं और जो ... है, वह किन छः धातुओं के बारे में कहा? भिक्षुओ, ये छः धातु हैं – पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु, वायु-धातु आकाश-धातु तथा विज्ञान-धातु। भिक्षुओ, ये छः धातु हैं – यह धर्म है जिसका मैंने उपदेश दिया है, जो विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दोषारोपित नहीं है, जो संक्लिष्ट नहीं है तथा, जो परिशुद्ध है। वह इन्हीं को लेकर दियागया है।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये छः स्पर्शायतन हैं और जो ... है वह किन छः स्पर्शायतनों के बारे में कहा? भिक्षुओ, ये छः स्पर्शायतन हैं – चक्षु-स्पर्शायतन, श्रोत्र-स्पर्शायतन, घ्राण-स्पर्शायतन, जिह्वा-स्पर्शायतन, काय-स्पर्शायतन, मन-स्पर्शायतन। भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये छः स्पर्शायतन हैं और जो... है, वह इन्हीं छः स्पर्शायतनों को लेकर दिया गया है।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये अठारह विहरण हैं और जो ... है, वह किन अठारह विहरणों के बारे में कहा? आंख से रूप देखकर प्रसन्न होने के विषय में विहरण करता है, दौर्मनस्य होने के विषय में विहरण करता है, उपेक्षा होने के विषय में विहरण करता है, श्रोत्र से शब्द सुनकर...घ्राण से गंध सूंघकर...जिह्वा से रस चखकर...काय से स्पर्श करके ...मन से विषयों का अनुभव कर प्रसन्न होने के विषय में विहरण करता है, दौर्मनस्य होने के विषय में विहरण करता है, उपेक्षा होने के विषय में विहरण करता है। भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये अठारह विहरण हैं और जो... है, वह इन अठारह विहरणों के ही बारे में या इन अठारह विहरणों को लेकर ही कहा।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि चार आर्य-सत्य हैं और जो ... है, वह किन आर्यसत्यों के बारे में कहा? भिक्षुओ, छः धातुओं के होने से गर्भाधान होता है, गर्भाधान होने से नाम-रूप, नाम-रूप होने से छः आयतन, छः आयतन होने से स्पर्श, तथा स्पर्श होने से वेदना की जिसे अनुभूति होती है उसी के संबंध में भिक्षुओ, मैं 'यह दुःख है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं, 'यह दुःख-समुदय है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं, 'यह दुःख-निरोध है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं, 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा (=मार्ग) है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं।

"भिक्षुओ, दुःख आर्य-सत्य क्या है?

"जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, व्याधि दुःख है, मृत्यु दुःख है, शोक दुःख है, परिदेव दुःख है, दुःख-दौर्मनस्य दुःख है, उपायास दुःख है, अप्रिय से संयोग दुःख है, प्रिय से वियोग दुःख है, इच्छित की अप्राप्ति दुःख है, संक्षेप में कहना हो तो पांच उपादान-स्कंध ही दुःख हैं। भिक्षुओ, यह दुःख आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, दुःख-समुदय आर्य-सत्य क्या है?

"अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नाम-रूप के होने से छः आयतन, छः आयतन के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति होती है। इस प्रकार इस सारे दुःख-स्कंध की उत्पत्ति होती है। भिक्षुओ, यह दुःख-समुदय आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, दुःख-निरोध आर्य-सत्य क्या है?

"अविद्या के ही संपूर्ण विराग (आसक्ति का अभाव) से, निरोध से, संस्कारों का निरोध होता है। संस्कारों के निरोध से विज्ञान-निरोध, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप-निरोध, नाम-रूप के निरोध से छः आयतनों का निरोध, छः आयतनों के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव-निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति का निरोध होता है। इस प्रकार इस सारे के सारे दुःख-स्कंध का निरोध होता है। भिक्षुओ, यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्य-सत्य कौन-सा है?

"यही आर्य अष्टांगिक मार्ग जो कि यों है – सम्यक-दृष्टि, सम्यक-संकल्प, सम्यक-वाणी, सम्यक-कर्मान्त, सम्यक-आजीविका, सम्यक-व्यायाम, सम्यक-स्मृति, सम्यक-समाधि। भिक्षुओ, यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि चार आर्य-सत्य हैं और जो ... है, वह इन आर्यसत्यों के ही बारे में (या इनको लेकर ही) कहा।"

२. भय सुत्त

६३. "भिक्षुओ, माता-पुत्र-वियोग के (माता से पुत्र को अलग करने वाले) ये तीन भय हैं, जिनकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, ऐसा समय आता है जब महान अग्निदाह होता है। भिक्षुओ, महान अग्निदाह के होने पर गांव भी जल जाते है, निगम भी जल जाते हैं और नगर भी जल जाते हैं। गांवों के जलने पर, निगमों के जलने पर तथा नगरों के जलने पर न माता की पुत्र से भेंट होती है और न पुत्र की माता से भेंट होती है। भिक्षुओ, यह पहला माता-पुत्र-वियोग भय है, जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब भारी वर्षा होती है। भारी वर्षा के होने पर भयंकर बाढ़ आती है। भयंकर बाढ़ के आने पर गांव भी बह जाते हैं, निगम भी बह जाते हैं तथा नगर भी बह जाते हैं। गांवों के बह जाने पर, निगमों के बह जाने पर तथा नगरों के बह जाने पर न माता की पुत्र से भेंट होती है और न पुत्र की माता से भेंट होती है। भिक्षुओ, यह दूसरा माता-पुत्र-वियोग भय है जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब जंगल (में रहने वाले चोर-डाकू) प्रकुपित हो जाते हैं। उस समय लोग रथों पर चढ़कर जनपद से भाग जाते हैं। भिक्षुओ, जब जंगल प्रकुपित हो जाते हैं और जब लोग रथों पर चढ़-चढ़कर जनपदों से भाग जाते हैं, उस समय न माता की पुत्र से भेंट होती है और न पुत्र की माता से भेंट होती है। भिक्षुओ, यह तीसरा माता-पुत्र-वियोग भय है, जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, माता को पुत्र से अलग करने वाले ये तीन भय हैं जिनकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, तीन भय ऐसे हैं जिनमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग। ये तीनों भय ही हैं जिनकी अज्ञानी पृथग्जन माता-पुत्र-वियोग भय कहकर चर्चा करता है। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, ऐसा समय आता है जब महान अग्निदाह होता है। भिक्षुओ, महान अग्निदाह के होने पर गांव भी जल जाते हैं, निगम भी जल जाते हैं और नगर भी जल जाते हैं। गांवों के जलने पर, निगमों के जलने पर तथा नगरों के जलने पर भी कभी-कभी ऐसा होता है कि माता की पुत्र से भेंट हो जाती है,

पुत्र की माता से भेंट हो जाती है। भिक्षुओ, यह पहला भय है जिसमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब भारी वर्षा होती है। भारी वर्षा के होने पर... तथा नगरों के बह जाने पर भी कभी-कभीऐसा होता है कि माता की पुत्र से भेंट हो जाती है, पुत्र की माता से भेंट हो जाती है। भिक्षुओ, यह दूसरा भय है जिसमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब जंगल (में रहने वाले चोर-डाकू) प्रकुपित हो जाते हैं। उस समय लोग रथों पर चढ़-चढ़कर जनपद से भाग जाते हैं। भिक्षुओ, जब जंगल (में रहने वाले चोर-डाकू) प्रकुपित हो जाते हैं और जब लोग रथों पर चढ़-चढ़कर जनपद से भाग जाते हैं, तब भी कभी-कभीऐसा होता है कि माता की पुत्र से भेंट हो जाती है, पुत्र की माता से भेंट हो जाती है। भिक्षुओ, यह तीसरा भय है जिसमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, उक्त तीन भय ऐसे हैं जिनमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिनकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, ये तीन माता-पुत्र-वियोग भय हैं। कौन-से तीन?

"बुढ़ापे का भय, रोग का भय तथा मृत्युका भय।

"भिक्षुओ, पुत्र के बूढ़े होने पर माता यह नहीं कह सकती कि मैं बूढ़ी होती हूं, तुम बूढ़े मत होओ और माता के बूढ़ी होने पर पुत्र यह नहीं कह सकता कि मैं बूढ़ाहोता हूं, तुम बूढ़ी मत होओ।

"भिक्षुओ, पुत्र के रोगी होने पर माता यह नहीं कह सकती कि मैं रोगी होती हूं, तुम रोगी मत होओ और माता के रोगी होने पर पुत्र भी यह नहीं कह सकता कि मैं रोगी होता हूं, तुम रोगिणी मत होओ।

"भिक्षुओ, मरते हुए पुत्र को माता यह नहीं कह सकती कि मैं मरती हूं, तुम मत मरो और मरती हुई माता को पुत्र भी यह नहीं कह सकता कि मैं मरता हूं, तुम मत मरो।

"भिक्षुओ, ये तीन माता-पुत्र-वियोग भय हैं।

"भिक्षुओ, इन तीनों माता-पुत्र-संयोग भयों का तथा इन तीनों माता-पुत्र-वियोग भयों का प्रहाण करने वाला, अतिक्रमण करने वाला मार्ग है,

पथ है। भिक्षुओ, इन तीनों माता-पुत्र-संयोग भयों का तथा इन तीनों माता-पुत्र-वियोग भयों का प्रहाण करने वाला, अतिक्रमण करने वाला मार्ग, पथ कौन-सा है?

"यही आर्य अष्टांगिक-मार्ग जो कि है सम्यक-दृष्टि, सम्यक-संकल्प, सम्यक-वाणी, सम्यक-कर्मान्त, सम्यक-आजीविका, सम्यक-व्यायाम, सम्यक-स्मृति तथा सम्यक-समाधि। भिक्षुओ, इन तीनों माता-पुत्र-संयोग भयों का तथा इन तीनों माता-पुत्र-वियोग भयों का प्रहाण करने वाला, समतिक्रमण करने वाला मार्ग, पथ यही है।"

३. वेनागपुर सुत्त

६४. एक समय महान भिक्षु-संघ के साथ भगवान कोशल (-जनपद) में चारिका करते हुए कोशलों के वेनागपुर नाम के ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। वेनागपुर के ब्राह्मण गृहपतियों ने सुना कि शाक्य-कुल-प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम वेनागपुर आये हैं। उन भगवान गौतम का इस प्रकार का यश फैला है – 'यह भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं, सुगत हैं, लोकों के ज्ञाता हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, (कुमार्ग-गामी) मनुष्यों का दमन करने वाले हैं और देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता हैं बुद्ध हैं, भगवान हैं। वे इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक को तथा श्रमण-ब्राह्मण-युक्त सदेव-मनुष्य जनता को, स्वयं जानकर, साक्षात कर (धर्म को) प्रकाशित करते हैं। वे आदि में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक, अंत में कल्याणकारक, अर्थों तथा व्यंजनों से युक्त, संपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करते हैं। ऐसे अरहंतों का दर्शन कल्याणकारी होता है'।

तब वेनागपुर के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान के पास पहुँचे। पहुँचकर कुछ अभिवादन करके एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान के साथ कुशलक्षेम की बातचीत करके एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान को हाथ जोड़कर एक ओर बैठ गये, कुछ अपना नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये, कुछ चुपचाप रहकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए वेनागपुरिक वच्छगोत्त ब्राह्मण ने भगवान से कहा –

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं। आपकी त्वचा शुद्ध तथा साफ है। हे गौतम! जैसे शरद ऋतु का बेर शुद्ध तथा साफ होता है, उसी प्रकार आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं और त्वचा सुंदर है। हे गौतम! जैसे ताड़ का अभी-अभी शाखा से टूटा, पका फल सुंदर होता है, उसी प्रकार आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं और त्वचा सुंदर है।

हे गौतम! जैसे चतुर सुनार द्वारा ठोक-पीटकर तैयार किया हुआ जांबुनद-स्वर्ण पांडु-वर्ण कंबल पर रखा हुआ चमकता है, उसी प्रकार आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं और त्वचा सुंदर है। हे गौतम! जितने भी उच्च-शयनासन, महा-शयनासन हैं – जैसे आराम-कुर्सी, पलंग, चित्रित ऊनी बिछौना, सफेद ऊनी बिछौना, मुलायम ऊनी बिछौना, रूईदार गद्दा, सिंह आदि के चित्र वाला ऊनी बिछौना, दोनों ओर डोरियेदार बिछौना, एक ओर डोरीदार ऊनी बिछौना, रत्न-जटित रेशमी बिछौना, रेशमी बिछौना, नर्तकियों के नाचने योग्य ऊनी बिछौना, हाथी आदि के चित्रों से चित्रित बिछौना, मृगासन, ऊपर चन्दोवे और दोनों ओर लाल तकियों वाला, कदलीमृग की छाल का बिछौना – आपको ये सहज ही प्राप्य हैं, आपको ये अनायास मिल जाते हैं।"

"ब्राह्मण! जो ये उच्च-शयनासन हैं, महा-शयनासन हैं – जैसे आराम-कुर्सी... कदलीमृग की छाल का बिछौना – ये प्रव्रजितों को दुर्लभ हैं, और मिलें तो इनको व्यवहार में लाना अनुचित है।

"हे ब्राह्मण! तीन उच्च-शयनासन हैं, महा-शयनासन हैं जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य हैं, अनायास सुलभ हैं। कौन-से तीन?

"दिव्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन; ब्रह्म उच्च-शयनासन, महा-शयनासन, आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन। हे ब्राह्मण! ये तीन उच्च-शयनासन, महा-शयनासन हैं जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य हैं, अनायास सुलभ हैं।"

"हे गौतम! कौन-सा वह दिव्य उच्च-शयनासन महा-शयनासन है जो आप गौतम को सहज ही प्राप्य है?

"हे ब्राह्मण! मैं जिस गांव या निगम के समीप रहता हूं, पूर्वाह्न होने पर चीवर पहन, पात्र-चीवर ले, उसी गांव या निगम में भिक्षार्थ जाता हूं। भिक्षाटन से लौटकर, भोजन कर चुकने पर उसी गांव के पास के जंगल में प्रवेश करता हूं। वहां जो घास या पत्ते होते हैं, उन्हें इकट्ठा कर, उन पर पालथी मार कर, शरीर को सीधा कर तथा स्मृति को मुख के ऊपर स्थापित कर बैठता हूं। उस समय मैं कामभोगों से पृथक हो, अकुशल-विचारों से पृथक हो, वितर्क-युक्त, विचार-युक्त, विवेकजन्य प्रीति तथा सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्तकर विहार करता हूं। फिर वितर्क और विचारों के उपशमन से आंतरिक प्रसन्नता और एकाग्रता रूपी समाधिजन्य प्रीतिसुख-युक्त द्वितीय ध्यान को प्राप्तकर विहार करता हूं। फिर प्रीति से भी विरक्त हो उपेक्षावान बन विहार करता हूं। उस समय स्मृतिमान, संप्रज्ञानी होता हूं, और काया से सुखद संवेदनाओं का

अनुभव करता हूं, जिसे आर्यजन 'उपेक्षावान हो, स्मृतिमान हो, सुखपूर्वक रहना कहते हैं,' उस तृतीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं। फिर सुख और दुःख दोनों के प्रहाण से, पूर्वस्थित सौमनस्य और दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हुए रहने से उत्पन्न चतुर्थ ध्यान को प्राप्तकर विहार करता हूं, जिसमें न दुःख होता है और न सुख, (केवल) उपेक्षा तथा स्मृति की परिशुद्धि रहती है।

"हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं चंक्रमण करता हूं तब वह मेरा दिव्य चंक्रमण होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं खड़ा होता हूं तब वह मेरा दिव्य खड़ा होना होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं बैठता हूं तब वह मेरा दिव्य बैठना होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं लेटता हूं तब वह मेरा दिव्य लेटना होता है। हे ब्राह्मण! यह है मेरा वह दिव्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास सुलभ है।"

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम के अतिरिक्त अन्य किसे इस प्रकार का दिव्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन सहज ही प्राप्य होगा, अनायास ही सुलभ होगा!

"हे गौतम! कौन-सा वह ब्रह्म उच्च-शयनासन महा-शयनासन है जो आप गौतम को सहज ही प्राप्य है?"

"हे ब्राह्मण! मैं जिस गांव या निगम के समीप रहता हूं, पूर्वाह्न होने पर (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, उसी गांव या निगम में भिक्षार्थ जाता हूं। भिक्षाटन से लौटकर, भोजन करचुकने पर उसी गांव के पास के जंगल में विहार करता हूं। वहां जो घास या पत्ते होते हैं, उन्हें इकट्ठा कर, उन पर पालथी मारकर, शरीर को सीधा कर तथा स्मृति को मुख के ऊपर स्थापित कर बैठता हूं। उस समय मैं एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशा को मैत्री-चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। ऊपर, नीचे, बीच में, सर्वत्र, सब तरह से, सब प्रकार से, सारे लोक को विपुल, विशाल, अप्रमाण, अवैरी, अक्रोधी, मैत्री-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। उस समय मैं एक दिशा... करुणा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। उस समय मैं एक दिशा... मुदिता-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। उस समय मैं एक दिशा... उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं।

"हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं चंक्रमण करता हूं तब वह मेरा ब्रह्म चंक्रमण होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं खड़ा होता हूं... बैठता हूं... लेटता हूं तब वह मेरा ब्रह्म लेटना होता है। हे ब्राह्मण! यह है मेरा वह ब्रह्म

उच्च-शयनासन, महा-शयनासन जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास सुलभ है।"

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम के अतिरिक्त अन्य किसे इस प्रकार का ब्रह्म उच्च-शयनासन, महा-शयनासन सहज ही प्राप्य होगा, अनायास ही सुलभ होगा!

"हे गौतम! वह आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन कौन-सा है जो आप गौतम को इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास ही सुलभ है?"

"हे ब्राह्मण! मैं जिस गांव या निगम के समीप रहता हूं, पूर्वाह्न होने पर (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, उसी गांव या निगम में भिक्षार्थ जाता हूं। भिक्षाटन से लौटकर, भोजन कर चुकने पर उसी गांव के पास के जंगल में विहार करता हूं। वहां जो घास या पत्ते होते हैं उन्हें इकट्ठा कर, उन पर पालथी मारकर, शरीर को सीधा कर तथा स्मृति को मुख के ऊपर स्थापित कर बैठता हूं। उस समय मैं यह जानता हूं कि मेरा राग प्रहीण हो गया है, जड़-मूल से चला गया है, कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो गया है, अभाव को प्राप्त हो गया है, भविष्य में उत्पत्ति की संभावना नहीं रही है, मेरा द्वेष प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है, मेरा मोह प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है।

"हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं चंक्रमण करता हूं तब वह मेरा आर्य चंक्रमण होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं खड़ा होता हूं... बैठता हूं... लेटता हूं तब वह मेरा आर्य लेटना होता है। हे ब्राह्मण! यह है मेरा वह आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास सुलभ है।"

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम के अतिरिक्त अन्य किसे इस प्रकार का आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन सहज ही प्राप्य होगा, अनायास ही सुलभ होगा!

"सुंदर गौतम! बहुत सुंदर गौतम! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं आप गौतम, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। गौतम! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

४. सरभ सुत्त

६५. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान (बुद्ध) राजगृह में गिज्झकूट पर्वत पर विहार करते थे।

उस समय सरभ नाम के परिव्राजक को इस धर्म-विनय को छोड़कर गये थोड़ा ही समय हुआ था। वह राजगृह की परिषद में ऐसी वाणी बोलता था – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही मैं उस धर्म-विनयसे परे हट गया हूं।'

उस समय बहुत से भिक्षु पूर्वाह्न में (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, राजगृह में भिक्षाटन के लिए प्रविष्ट हुए।

उन भिक्षुओं ने राजगृह की परिषद में सरभ परिव्राजक द्वारा बोली जाने वाली ऐसी वाणी सुनी – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही मैं उस धर्म-विनय से परे हट गया हूं।'

तब वे भिक्षु राजगृह में भिक्षाटन करके, लौट चुकने पर, भोजन के अनंतर भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान को यह कहा –

"भंते! सरभ नाम का परिव्राजक कुछ ही समय हुआ इस धर्म-विनय को छोड़ गया है। वह राजगृह की परिषद में ऐसी वाणी बोलता है – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही मैं उस धर्म-विनय से परे हट गया हूं।' भंते भगवान! अच्छा हो यदि आप कृपा करके सिप्पिनिका (नदी) के तट पर परिव्राजकाराम में जहां सरभ है, वहां पधारें।" भगवान ने मौन रहकर स्वीकार कर लिया।

तब भगवान शाम के समय, ध्यान से उठकर, सिप्पिनिका (नदी) के किनारे परिव्राजकाराम में सरभ परिव्राजक के पास गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। बैठकर भगवान ने सरभ परिव्राजक को यह कहा –

"हे सरभ! क्या तू सचमुच ऐसा कहता है – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही उस धर्म-विनय से परे हट गया हूं।' ऐसा पूछने पर सरभ परिव्राजक चुप रहा।

दूसरी बार भी भगवान ने सरभ परिव्राजक को यह कहा – "सरभ! कह! क्या तूने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जान लिया? यदि उसमें कुछ कमी होगी तो मैं कमी पूरी कर दूंगा। यदि तेरी जानकारी पूरी होगी तो मैं समर्थन कर दूंगा।" दूसरी बार भी सरभ परिव्राजक चुप रहा।

तीसरी बार भी भगवान ने सरभ परिव्राजक को यह कहा – "सरभ! तू बता, क्या तूने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जान लिया? यदि उसमें कुछ

कमी होगी, तो मैं पूरी कर दूंगा। यदि तेरी जानकारी पूरी होगी तो मैं समर्थन कर दूंगा।" तीसरी बार भी सरभ परिव्राजक चुप रहा।

उस समय राजगृह के उन परिव्राजकों ने सरभ परिव्राजक को यह कहा – "आयुष्मान! जो कुछ तुम श्रमण गौतम से पूछना चाहते हो उसी विषय में श्रमण गौतम तुम्हें निमंत्रित करते हैं। आयुष्मान सरभ! कह, क्या तूने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जान लिया? यदि उसमें कुछ कमी होगी तो श्रमण गौतम पूरी कर देंगे। यदि तेरी जानकारी पूरी होगी, तो उसका समर्थन कर देंगे।"

ऐसा कहे जाने पर सरभ परिव्राजक चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज होकर बैठ गया।

तब भगवान ने सरभ परिव्राजक को चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज बैठा देख, उन परिव्राजकों को कहा –"यदि कोई परिव्राजक मुझे यह कहे कि सम्यक संबुद्ध होने की घोषणा करने पर भी अमुक विषय का ज्ञान नहीं है, तो मैं उससे ठीक से प्रश्न करूं, पूछताछ करूं, चर्चा करूं। मेरे द्वारा ठीक से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, इस बात की गुंजाइश नहीं है कि वह इन तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त न हो; दूसरी-दूसरी बात करे, बाहर की बात लाये; क्रोध, द्वेष वा असंतोष प्रकट करे; अथवा सरभ परिव्राजक की तरह चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ निस्तेज होकर बैठ जाय।

"यदि कोई परिव्राजक मुझे यह कहे कि क्षीणास्रव होने की घोषणा करने पर भी, अमुक-अमुक आस्रव क्षीण नहीं हुए हैं, तो मैं उससे ठीक से प्रश्न करूं, पूछताछ करूं, चर्चा करूं। मेरे द्वारा ठीक से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, इस बात की गुंजाइश नहीं है कि वह इन तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त न हो; दूसरी-दूसरी बात करे, बाहर की बात लाये; क्रोध, द्वेष वा असंतोष प्रकट करे; अथवा सरभ परिव्राजक की तरह चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज होकर बैठ जाय।

"यदि कोई परिव्राजक मुझे यह कहे कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्मोपदेश किया गया है, तदनुसार आचरण करनेवाले को यह दुःख के सम्यक क्षय की ओर नहीं ले जाता – तो मैं उससे ठीक से प्रश्न करूं, पूछताछ करूं, चर्चा करूं। मेरे द्वारा ठीक से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर,

चर्चा किये जाने पर, इस बात की गुंजाइश नहीं है कि वह इन तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त न हो; दूसरी-दूसरी बात करे, बाहर की बात लाये; क्रोध, द्वेष वा असंतोष प्रकट करे; अथवा सरभ परिव्राजक की तरह चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज होकर बैठ जाय।

इस प्रकार सिप्पिनिका (नदी) के तट पर स्थित परिव्राजकाराम में भगवान तीन बार सिंहनाद करके आकाशमार्ग से चले गये।

भगवान के चले जाने के थोड़े ही समय बाद वे परिव्राजक सरभ परिव्राजक को वाणी के कोड़े मारने लगे। "आयुष्मान सरभ! जैसे कोई बूढ़ा गीदड़ बड़े जंगल में सिंहनाद करने की बात कहकर गीदड़ की बोली ही बोले, सियार की बोली ही बोले, इसी प्रकार हे आयुष्मान सरभ! तूने श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में मैं सिंहनाद करूंगा कहकर उपस्थिति में केवल गीदड़ की बोली, सियार की बोली ही बोली है। जैसे कोई मुर्गी का चूजा मुर्गे की तरह बांग दूंगा कहकर मुर्गी के चूजे की ही आवाज निकाले, उसी प्रकार हे आयुष्मान सरभ! तूने श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में मैं सिंहनाद करूंगा कहकर उपस्थिति में केवल गीदड़ की बोली, सियार की बोली ही बोली है। आयुष्मान सरभ! जैसे वृषभ समझता है कि शून्य गोशाला में उसे जोर से रंभना चाहिए, इसी प्रकार आयुष्मान सरभ! तू भी यह समझता है कि श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में ही जोर से बोलना चाहिए।"

ऐसे उन परिव्राजकों ने चारों ओर से सरभ परिव्राजक को वाणी के कोड़े लगाये।

५. केसमुत्ति सुत्त

६६. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान कोशल जनपद में महान भिक्षु-संघ के साथ चारिका करते हुए केशमुत्त नामक कालामों के निगम में गये। केशमुत्त के कालामों ने सुना कि शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्यपुत्र श्रमण गौतम केशमुत्त पधारे हैं। उन भगवान गौतम का इस प्रकार से सु-यश फैला हुआ है –'वह भगवान पूज्य हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं... प्रकाशित करते हैं। ऐसे अरहंतों का दर्शन करना अच्छा होता है।

तब केशमुत्तिय कालाम भगवान के पास गये। पास जाकर कुछ भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान के साथ कुशलक्षेम का वार्तालाप करके एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान को हाथ जोड़कर नमस्कार करके एक ओर बैठ गये, कुछ (अपना) नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये,

कुछ चुपचाप एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे केशमुत्तिय कालामोंने भगवान को यह कहा –

"भंते! कुछ श्रमण-ब्राह्मण केशमुत्त आते हैं। वे अपने ही मत को प्रकाशित करते हैं, उसी की बड़ाई करते हैं। दूसरे के मत की निंदा करते हैं, अनादर करते हैं, तिरस्कार करते हैं, उसे कुचल देते हैं। भंते! दूसरे भी कुछ श्रमण-ब्राह्मण के शमुत्त आते हैं। वे भी अपने ही मत को प्रकाशित करते हैं, उसी की बड़ाई करते हैं। दूसरे के मत की निंदा करते हैं, अनादर करते हैं, तिरस्कार करते हैं, उसे कुचल देते हैं। भंते! इससे हमारे मन में शक पैदा होता है, संदेह पैदा होता है कि इन श्रमणों में से किसने सत्य कहा, किसने असत्य?

"हे कालामो! शक करना ठीक है। संदेह करना ठीक है। शक करने ही की जगह पर संदेह उत्पन्न होता है।

"हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है – तब हे कालामो! तुम उन बातों को छोड़ दो।

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो लोभ उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है, या अहितके लिए?"

"भंते! अहित के लिए।"

"हे कालामो! जो लोभी है, जो लोभ से अभिभूत है, जो असंयत है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकालतक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो द्वेष उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है, या अहितके लिए?"

"भंते! अहित के लिए।"

"हे कालामो! जो द्वेषी है, जो द्वेष से अभिभूत है, जो असंयत है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो मोह उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है या अहितके लिए?"

"भंते! अहित के लिए।"

"हे कालामो! जो मूढ़ है, जो मोह से अभिभूत है, जो असंयत है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो कालामो! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! अकुशल हैं।"

"सदोष हैं या निर्दोष?"

"भंते! सदोष हैं।"

"विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं या प्रशंसित हैं?"

"भंते! विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं।"

"पूरी तरह से आचरण करने पर अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं, अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम्हें कैसा लगता है?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं। इस विषय में हमें ऐसा ही लगता है।"

"तो हे कालामो! यह जो कहा –'हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि

यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है – तब हे कालामो! तुम उन बातों को छोड़ दो' – यह जो कुछ कहा गया, यह इसी संबंध में कहा गया।

"हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को... केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ-पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है – तब हे कालामो! तुम इन बातों के अनुसार आचरण करो।

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो अलोभ उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है या अहितके लिए?"

"भंते! हित के लिए।"

"हे कालामो! जो अलोभी है, जो लोभ से अभिभूत नहीं है, जो असंयत नहीं है, वह प्राणी-हत्या भी नहीं करता, चोरी भी नहीं करता, परस्त्रीगमन भी नहीं करता, झूठ भी नहीं बोलता, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा नहीं देता; यह दीर्घकालतक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो अद्वेष उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है या अहितके लिए?"

"भंते! हित के लिए।"

"हे कालामो! जो अद्वेषी है, जो द्वेष से अभिभूत नहीं है, जो असंयत नहीं है, वह प्राणी-हत्या भी नहीं करता, चोरी भी नहीं करता, परस्त्रीगमन भी नहीं करता, झूठ भी नहीं बोलता, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा नहीं देता; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो अमोह उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए उत्पन्न होता है, या अहितके लिए?"

"भंते! हित के लिए।"

"हे कालामो! जो मूढ़ नहीं है, जो मूढ़ता से अभिभूत नहीं है, जो असंयत नहीं है, वह प्राणी-हत्या भी नहीं करता, चोरी भी नहीं करता, परस्त्रीगमन भी नहीं करता, झूठ भी नहीं बोलता, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा नहीं देता; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो कालामो! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! कुशल हैं।"

"सदोष हैं या निर्दोष?"

"भंते! निर्दोष हैं।"

"विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, या प्रशंसित?"

"भंते! विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं।"

"पूरी तरह से आचरण करनेपर सुख के लिए होते हैं, अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम्हें कैसा लगता है?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करनेपर, हित के लिए, सुख के लिए होते हैं। इस विषय में हमें ऐसा ही लगता है।"

"तो हे कालामो! यह जो कहा –'हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही

यह जान लो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है –तब हे कालामो! तुम इन बातों के अनुसार चलो' –यह जो कुछ कहा गया, यह इसी संबंध में कहा गया।

"हे कालामो! जो आर्य-श्रावक! इस प्रकार लोभरहित होता है, क्रोध-रहित होता है, मूढ़ता-रहित होता है, जानकार होता है, स्मृतिमान होता है, वह एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशा को मैत्री-चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। ऊपर, नीचे, बीच में, सर्वत्र, सब तरह से, सब प्रकार से, सारे लोक को विपुल, विस्तृत, अपरिमेय, अवैरी, अद्वेषी, मैत्री-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। ...करुणा-युक्त चित्त से... मुदिता-युक्त चित्त से... उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है।

"हे कालामो! उस प्रकार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त आर्य-श्रावक को इसी जीवन में चार प्रकार के आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं –

"'यदि परलोक है, यदि सुकृत-दृष्कृत का फल मिलता है, तो यह होगा कि शरीर छूटने पर, मरने के बाद, मैं सुगति को प्राप्त होऊंगा, मैं स्वर्गलोक में पैदा होऊंगा – यह उसे पहला आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि परलोक नहीं है, यदि सुकृत-दृष्कृत का फल नहीं मिलता है, तो मैं यहां इस जीवन में अवैरी होकर, अद्वेषी होकर, दुःख-रहित होकर, सुखी होकर विचरण करता हूं – यह उसे दूसरा आश्वासनप्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा होता है, तो मैं किसी का बुरा नहीं सोचता हूं, जब मैं कोई पाप-कर्म नहीं करता हूं तो मुझे दुःख कैसे स्पर्श करेगा? –यह उसे तीसरा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा नहीं होता, तो मैं अपने आप को दोनों दृष्टियों से विशुद्ध पाता हूं – यह उसे चौथा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"हे कालामो! उस प्रकार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी-चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त, आर्य-श्रावक को इसी जीवन में चार प्रकार के आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं।"

"भगवान! ऐसा ही है। सुगत! ऐसा ही है। भंते! इस प्रकार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी-चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त आर्य-श्रावक को इसी जीवन में चार प्रकार के आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं। 'यदि परलोक है, यदि

सुकृत-दुष्कृत का फल मिलता है तो यह होगा कि शरीर छूटने पर, मरने के बाद मैं सुगति को प्राप्त होकर स्वर्गलोक में पैदा होऊंगा –यह उसे पहला आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि परलोक नहीं है, यदि सुकृत-दुष्कृत का फल नहीं मिलता है, तो मैं यहां इस जीवन में अवैरी होकर, अद्वेषी होकर, दुःख-रहित होकर, सुखी होकर विचरण करता हूं – यह उसे दूसरा आश्वासनप्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा होता है, तो मैं किसी का बुरा नहीं सोचता हूं, जब मैं कोई पाप-कर्म नहीं करता हूं तो मुझे दुःख कैसे स्पर्श करेगा? –यह उसे तीसरा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा नहीं होता, तो मैं अपने आप को दोनों दृष्टियों से विशुद्ध पाता हूं –यह उसे चौथा आश्वासन प्राप्त हो जाता है। भंते! इस प्रकार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी-चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त आर्य-श्रावक को इसी जीवन में ये चार प्रकार के आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं।

"भंते! सुंदर है... यह हम भगवान की, धर्म की तथा भिक्षु-संघ की शरण ग्रहण करते हैं। भंते भगवान! आज से जीवनपर्यंत आप हमें शरणागत उपासक जानें।"

६. साळ्ह सुत्त

६७. ऐसा मैंने सुना। एक समय आयुष्मान नन्दक श्रावस्ती में मिगार-माता के पूर्वाराम-प्रासाद में विहार कर रहे थे।

तब मिगार का पोता साळ्ह तथा सेखुनिय का पोता साण आयुष्मान नन्दक के पास गये। जाकर आयुष्मान नन्दक को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए मिगार के पोते साळ्ह को आयुष्मान नन्दक ने यह कहा –'हे साळ्ह! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्क सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळ्ह! जब तुम

स्वानुभव से अपने आप यह जान लो कि ये बातें अकुशलहैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है –तब हे साळ्ह! तुम इन बातों को छोड़ दो।

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, लोभ है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं लोभ को ही अभिध्या कहता हूं। हे साळ्ह! जो लोभी है, जो लोभग्रस्त है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरे को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहिततथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! हां।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, द्वेष है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं द्वेष को ही व्यापाद कहता हूं। हे साळ्ह! जो द्वेष-युक्त है, जो विद्वेषी (दुर्भावनापूर्ण) है वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरे को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकालतक उसके अहिततथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! हां।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, मोह है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं मोह को ही अविद्या कहता हूं। हे साळ्ह! जो मूढ़ है, जो अविद्याग्रस्त है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरे को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहिततथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! हां।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! अकुशल।"

"सदोष या निर्दोष?"

"भंते! सदोष।"

"विज्ञों द्वारा निंदित या विज्ञों द्वारा प्रशंसित?"

"भंते! विज्ञों द्वारा निंदित।"

"पूरी तरह से आचरण करने पर, अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम क्या सोचते हो?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं। इस विषय में हम यही सोचते हैं।"

"तो हे साळह! यह जो कहा –'हे साळह! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळह! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जान लो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है – तो हे साळह! तुम इन बातों को छोड़ दो।' –यह जो कुछ कहा गया, यह इसी संबंध में कहा गया।

"इस प्रकार साळह! तुम किसी बात को... केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळह! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जान लो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है – तो हे साळह! तुम इन बातों के अनुसार आचरण करो।

"तो साळह! क्या मानते हो, अलोभ है?"

"भंते! है।"

"साळह! मैं अलोभ को ही अनभिध्या कहता हूं। हे साळह! जो निर्लोभी है, जो लोभरहित है, वह न प्राणी-हत्या करता है, न चोरी करता है, न परस्त्रीगमन करता है, न झूठ बोलता है, न दूसरे को वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो साळह! क्या मानते हो, अद्वेष है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं अद्वेष को ही अव्यापाद कहता हूं। साळ्ह! जो द्वेष-रहित है, जो अविद्वेषी है, वह न प्राणी-हत्या करता है... न झूठ बोलता है, न दूसरे को वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकालतक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, अमोह है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं अमोह को ही विद्या कहता हूं। साळ्ह! जो मूढ़ता-रहित है, जो विद्या-प्राप्त है, वह न प्राणी-हत्या करता है... न झूठ बोलता है, न दूसरे को वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकालतक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! कुशल।"

"सदोष या निर्दोष?"

"भंते! निर्दोष।"

"विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित या विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित?"

"भंते! विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित।"

"पूरी तरह से आचरण करने पर, हित के लिए, सुख के लिए होते हैं अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम क्या सोचते हो?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, हित के लिए, सुख के लिए होते हैं। इस विषय में हम यही सोचते हैं।"

"तो हे साळ्ह! यह जो कहा –'हे साळ्ह! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का

व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळह! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जान लो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है –तब हे साळह! तुम इन बातों के अनुसार आचरण करो' –यह जो कुछ कहा गया, वह इसी संबंध में कहा गया।

"हे साळह! जो आर्य-श्रावक इस प्रकार लोभरहित होता है, द्वेष-रहित होता है, मूढ़ता-रहित होता है, संप्रज्ञानी होता है, स्मृतिमान होता है, वह एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशा को मैत्री-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है,... करुणा-युक्त चित्त से... मुदिता-युक्त चित्त से... उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। ऊपर, नीचे, बीच में सर्वत्र, सब तरह से, सब प्रकार से, सारे लोक को, विपुल, उदार, अपरिमेय, अवैरी, अद्वेषी, उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। वह यथाभूत जानता है –'यह है, यह हीन है, यह प्रणीत (=श्रेष्ठ) अवस्था है, इस संज्ञा से श्रेष्ठतर अवस्था में जाया जा सकता है।' तब उस इस तरह जानने वाले और देखने वाले का चित्त कामास्रवों से भी विमुक्त हो जाता है, भवास्रवों से भी विमुक्त हो जाता है, अविद्यास्रवों से भी विमुक्त हो जाता है, विमुक्त होने पर, 'विमुक्त हूं' यह ज्ञान हो जाता है। वह यथाभूत जान जाता है –'जन्म (का कारण) क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास (का उद्देश्य) पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया। अब यहां जन्म के लिए और कुछ कारण नहीं रह गया।'

"वह यह यथाभूत जान जाता है –'पहले लोभ था, वह अकुशल था। अब वह नहीं रहा है, यह कुशल है। पहले द्वेष था, वह अकुशल था। अब वह नहीं रहा है, यह कुशल है। पहले मोह था, वह अकुशल था। अब वह नहीं रहा है, यह कुशल है।' इस प्रकार वह इसी जीवन में तृष्णा-विहीन, निर्वाणप्राप्त, शांत, सुखी, अपने से ब्रह्मभूत होकर विहार करता है।"

७. कथावत्थु सुत्त

६८. "भिक्षुओ, तीन कथा-वस्तुएं हैं। कौन-सी तीन?

"भिक्षुओ, या तो भूतकाल संबंधी बातचीत हो –'भूतकाल में ऐसा हुआ' –या भविष्यकाल संबंधी बातचीत हो –'भविष्य में ऐसा होगा' –या वर्तमान काल संबंधी बातचीत हो –'इस समय वर्तमान में ऐसा है।'

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी 'हां या नहीं' में उत्तर दिये जाने वाले प्रश्न का 'हां या नहीं' में उत्तर नहीं देता, विभक्त करके उत्तर देने योग्य प्रश्न का विभक्त करके उत्तर नहीं देता, प्रतिप्रश्न पूछकर उत्तर देने योग्य प्रश्न का प्रतिप्रश्न पूछकर उत्तर नहीं देता, उत्तर न देने योग्य प्रश्न को बिना उत्तर दिये टाल नहीं देता, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी 'हां या नहीं' में उत्तर दिये जाने वाले प्रश्न का 'हां या नहीं' में उत्तर देता है, विभक्त करके उत्तर देने योग्य प्रश्न का विभक्त करके उत्तर देता है, प्रतिप्रश्न पूछ कर उत्तर देने योग्य प्रश्न का प्रतिप्रश्न पूछकर उत्तर देता है, उत्तर न देने योग्य प्रश्न को बिना उत्तर दिये ही टाल देता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं है?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर किसी एक निष्कर्ष पर स्थिर नहीं रहता, किसी एक मान्यता पर स्थिर नहीं रहता, किसी एक सर्वमान्य तर्क पर स्थिर नहीं रहता, प्रश्नोत्तर की सामान्य प्रक्रिया को नहीं जानता, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर किसी एक निष्कर्ष पर स्थिर रहता है, किसी एक मान्यता पर स्थिर रहता है, किसी एक सर्वमान्य तर्क पर स्थिर रहता है, प्रश्नोत्तर की सामान्य प्रक्रिया को जानता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर दूसरी-दूसरी बात करता है, बाहरी बात लाता है, कोप, द्वेष वा असंतोष प्रकट करता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर दूसरी-दूसरी बात नहीं करता, बाहरी बात नहीं लाता, कोप, द्वेष वा असंतोष प्रकट नहीं करता, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर, जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करता है, जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करके तर्क को काट देता है, हँसकर उपहास

करता है और जब तर्क देने में कोई लड़खड़ाता है तब उसे धर दबाता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर न जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करता है, न जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करके तर्क को काट देता है, न हँसकर उपहास करता है, न तो तर्क देने में किसी के लड़खड़ाने पर उसे धर दबाता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि इस आदमी में वार्तालाप करने के आवश्यक आधार (प्रत्यय) हैं या नहीं?

"भिक्षुओ, जो ध्यान देकर नहीं सुनता वह वार्तालाप करने के आवश्यक आधार से युक्त नहीं होता, जो ध्यान देकर सुनता है वह वैसा होता है। जो वैसा होता है वह एक धर्म (आर्य-धर्म) को जानता है, एक धर्म (दुःखसत्यधर्म) को अच्छी तरह जानता है, एक धर्म (अकुशल) का त्याग करता है, एक धर्म (अर्हत्व) का साक्षात करता है। वह एक धर्म को जानकर, एक धर्म को अच्छी तरह जानकर, एक धर्म का त्याग कर, एक धर्म का साक्षात करता है, इस प्रकार वह एक धर्म अर्थात सम्यक-विमुक्ति को पा लेता है। भिक्षुओ, यही कथा का लाभ है, यही मंत्रणा का लाभ है, यही वार्तालाप करने के आवश्यक आधार (प्रत्यय) से युक्त होने का लाभ है और यही ध्यान देने का लाभ है जो कि यह उपादान-रहित चित्त की विमुक्ति है।"

"ये विरुद्धा सल्लपन्ति, विनिविट्ठा समुस्सिता।
अनरियगुणमासज्ज, अञ्ञोञ्ञविवरेसिनो॥

"दुब्भासितं विक्खलितं, सम्पमोहं पराजयं।
अञ्ञोञ्ञस्साभिनन्दन्ति, तदरियो कथनाचरे॥

"सचे चस्स कथाकामो, कालमञ्ञाय पण्डितो।
धम्मट्ठपटिसंयुत्ता, या अरियचरिता कथा॥

"तं कथं कथये धीरो, अविरुद्धो अनुस्सितो।
अनुन्नतेन मनसा, अपळासो असाहसो॥

"अनुसूयायमानो सो, सम्मदञ्ञाय भासति।
सुभासितं अनुमोदेय्य, दुब्भट्ठे नापसादये॥

"उपारम्भं न सिक्खेय्य, खलितञ्च न गाहये।
नाभिहरे नाभिमद्दे, न वाचं पयुतं भणे॥

"अञ्ञातत्थं पसादत्थं, सतं वे होति मन्तना।
एवं खो अरिया मन्तेन्ति, एसा अरियान मन्तना।
एतदञ्ञाय मेधावी, न समुस्सेय्य मन्तये"ति॥

["जो कथन अभिनिवेश के वशीभूत होकर, अभिमान के कारण विरोधी होता है, जो अनार्य-गुण को प्राप्त कर परस्पर छिद्रान्वेषण युक्त होता है, जो परस्पर एक दूसरे के अयथार्थ-भाषण, स्खलन, प्रमादवश बोले गये शब्दों तथा एक दूसरे की पराजय को लेकर प्रसन्नता से किया गया होता है, आर्य लोग वैसा कथन नहीं करते।

यदि कोई पंडित बात करने का उचित समय जानकर धर्म तथा अर्थ से युक्त, आर्य-चरित-युक्त बातचीत करना चाहे तो धैर्यवान, अविरोधी तथा अभिमानशून्य आदमी को चाहिए कि वह दुराग्रह-रहित हो, दुस्साहस-रहित हो, ईर्ष्या-रहित हो, शांतचित्त से अच्छी तरह सोच-समझकर बातचीत करे। उसे चाहिए कि वह दूसरों के शुभ कथन का अनुमोदन करे और अनुचित बोलने का बुरा न माने। उलाहना देना न सीखे, स्खलन को लेकर न बैठे, यूं ही सूत्रादि को उद्धृत न करे, न वैसा करके प्रश्न को दबावे, न झूठी बात बोले। सत्पुरुषों की बातचीत ज्ञान के लिए होती है तथा मन में प्रसन्नता पैदा करने के लिए होती है। आर्य-जन इसी प्रकार वार्तालाप करते हैं, यही आर्य-जनों की मंत्रणा है। इस बात को जानकर मेधावी पुरुष को चाहिए कि अभिमानयुक्त होकर बातचीत न करे।"]

८. अन्यतैर्थिक सुत्त

६९. "भिक्षुओ, यदि अन्यतैर्थिक (दूसरे मतों के) परिव्राजक ऐसा पूछें कि आयुष्मानो, ये तीन धर्म हैं। कौन-से तीन? राग, द्वेष और मोह। आयुष्मानो! ये तीन धर्म हैं। आयुष्मानो! इन तीनों धर्मों में किस की क्या विशेषता है? किसमें क्या खास बात है? किस का क्या विभेद है? भिक्षुओ, दूसरे परिव्राजकों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर, तुम इस का क्या निराकरण करोगे?"

"भंते! भगवान ही धर्म के मूल हैं, भगवान ही धर्म के नेता हैं, भगवान ही धर्म के शरण-स्थान हैं। भंते! अच्छा हो यदि इस कथन के अर्थ को भगवान ही प्रकाशित करें। भगवान से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।"

"तो भिक्षुओ, सुनो। अच्छी तरह मन में धारण करो। कहता हूं।" 'भंते, अच्छा!' कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, यदि अन्यतैर्थिक (दूसरे मतों के) परिव्राजक ऐसा पूछें कि आयुष्मानो, ये तीन धर्म हैं। कौन-से तीन? राग, द्वेष और मोह। आयुष्मानो, ये तीन धर्म हैं। आयुष्मानो! इन तीनों धर्मों में किसकी क्या विशेषता है? किसमें क्या खास बात है? किसका क्या विभेद है? भिक्षुओ, दूसरे परिव्राजकों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर तुम इसका इस प्रकार निराकरण करना – 'आयुष्मानो! राग में अल्पदोष है किंतु उससे मुक्ति सहज नहीं, द्वेष में महान दोष है किंतु उससे मुक्ति सहज है; मोह में महान दोष है और उससे भी मुक्ति सहज नहीं।'

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न होता है, उत्पन्न अत्यधिक विपुल होता है?

"'कहना चाहिए कि शुभ-निमित्त इसका हेतु है, कारण है। शुभ-निमित्त का अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न राग उत्पन्न होता है, उत्पन्न राग अत्यधिक विपुल होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न होता है, उत्पन्न राग अत्यधिक विपुल होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है, तथा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है।

"'कहना चाहिए कि प्रतिकूल भाव इसका हेतु है, कारण है। प्रतिकूल भाव का अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न होता है, तथा उत्पन्न मोह अत्यधिक विपुल होता है?

"'कहना चाहिए कि अयथार्थ चिंतन इसका हेतु है, कारण है। अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न मोह उत्पन्न होता है, उत्पन्न मोह अत्यधिक विपुल होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न मोह अत्यधिक विपुल होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता, तथा उत्पन्न राग का प्रहाण होता है?

"'कहना चाहिए कि अशुभ-निमित्त ही इसका हेतु है, कारण है। अशुभ-निमित्त का यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता, तथा उत्पन्न राग का प्रहाण होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता तथा उत्पन्न राग का प्रहाण होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता तथा उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है?

"'कहना चाहिए कि चित्त को विमुक्त करने वाली मैत्री-भावना ही इसका हेतु है, कारण है। चित्त को विमुक्त करने वाली मैत्री-भावना का यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न मोह का प्रहाण होता है?

"'कहना चाहिए कि यथार्थ चिंतन करना ही इसका हेतु है, कारण है। यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न मोह का प्रहाण होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न मोह का प्रहाण होता है।"

९. अकुसल-मूल सुत्त

७०. "भिक्षुओ, ये तीन अकुशल-मूल हैं? कौन-से तीन? लोभ अकुशल-मूल है, द्वेष अकुशल-मूल है, मोह अकुशल-मूल है।

"भिक्षुओ, जो लोभ है, अकुशल-मूल ही है और लोभी आदमी शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी अकुशल है। लोभी आदमी लोभ के कारण, लोभ से अभिभूत होकर, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि करके या उनकी निंदा करके या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए (जिसकी लाठी उसकी भैंस) के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख देता है, वह अकुशल है। इसलिए लोभ से, लोभ के कारण से, लोभ से उत्पन्न होकर, लोभ के प्रत्यय से अनेक पाप, अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो द्वेष है, अकुशल-मूल ही है और द्वेषी आदमी शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी अकुशल है। द्वेषी आदमी द्वेष के कारण, द्वेष से अभिभूत होकर, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि करके या उनकी निंदा करके या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख देता है, वह अकुशल है। इसलिए द्वेष से, द्वेष के कारण से, द्वेष से उत्पन्न होकर, द्वेष के प्रत्यय से अनेक पाप, अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो मोह है, अकुशल-मूल ही है और मूढ़ आदमी शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछभी करताहै वह भी अकुशलहै। मूढ़ आदमी मूढ़ता के कारण, मूढ़ता से अभिभूत होकर, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि करया उनकी निंदा करया मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख देता है, वह अकुशलहै। इसलिए मूढ़ता से, मूढ़ता के कारणसे, मूढ़ता से उत्पन्न होकर, मूढ़ता के प्रत्यय से अनेक पाप, अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार व्यक्ति 'अकाल-वादी', 'असत्य-वादी', 'अनर्थ-वादी', 'अधर्म-वादी', 'अविनय-वादी' कहाजाता है।

"भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति 'अकाल-वादी' भी, 'असत्य-वादी' भी, 'अनर्थ-वादी' भी, 'अधर्म-वादी' भी, 'अविनय-वादी' भी क्यों कहा जाता है? –क्योंकि यह व्यक्ति दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख देता है। सच्ची बात कही जाने पर उसे अस्वीकार करता है, स्वीकार नहीं करता; झूठी बात कही जाने पर उसके आरोप से मुक्त होने का प्रयास नहीं करता कि यह असत्य है, यह अभूत है। इसलिए इस प्रकार का व्यक्ति 'अकाल-वादी' भी, 'असत्य-वादी' भी, 'अनर्थ-वादी' भी, 'अधर्म-वादी' भी, 'अविनय-वादी' भी कहा जाता है।

"भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति लोभ से उत्पन्न, पापी अकुशल-धर्मों से अभिभूत होने के कारणइसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दुःख अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति की ही आशा करनी चाहिए। इसी प्रकार द्वेष से उत्पन्न... मोह से उत्पन्न, पापी अकुशल-धर्मों के अभिभूत होने के कारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दुःख अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति की ही आशा करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, जैसे चाहे शाल-वृक्ष हो, चाहे धव-वृक्ष हो, चाहे स्पंदन-वृक्ष हो, यदि वह मालुवा-लता (=अमर-बेल) से लदा हो, घिरा हो तो उसकी हानि ही होती है, उसका विनाश ही होता है, हानि-विनाश ही होता है। भिक्षुओ, इसी प्रकार, ऐसा व्यक्ति लोभ से उत्पन्न, पापी अकुशल धर्मों से अभिभूत होने के कारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दुःख अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद, दुर्गति की ही

आशा करनी चाहिए। इसी प्रकार द्वेष से उत्पन्न... मोह से उत्पन्न, पापी अकुशल धर्मों के अभिभूत होने के कारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दुःख अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति की ही आशा करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, ये तीन कुशल-मूल हैं। कौन-से तीन? अलोभ कुशल-मूल है, अद्वेष कुशल-मूल है, अमोह कुशल-मूल है।

"भिक्षुओ, जो अलोभ है, कुशलमूल ही है और अलोभी व्यक्ति शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी कुशल है। अलोभी व्यक्ति, अलोभ के कारण लोभ से अभिभूत न होने के कारण, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, वही कुशल है। इसलिए अलोभ से, अलोभ के कारण, अलोभ से उत्पन्न होकर, अलोभ के प्रत्यय से अनेक कुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो अद्वेष है, कुशलमूल ही है और अद्वेषी व्यक्ति शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है, वह भी कुशल है। अद्वेषी व्यक्ति, अद्वेष के कारण, द्वेष से अभिभूत न होने के कारण, दूसरे को जो अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल का प्रयोग करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, वही कुशल है। इसलिए अद्वेष से, अद्वेष के कारण, अद्वेष से उत्पन्न होकर, अद्वेष के प्रत्यय से अनेक कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो अमोह है, कुशलमूल ही है और मोह-रहित व्यक्ति शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है, वह भी कुशल है। मोह-रहित व्यक्ति अमोह के कारण, मोह से अभिभूत न होने के कारण, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, वही कुशल है। इसलिए अमोह से, अमोह के कारण, अमोह से उत्पन्न होकर, अमोह के प्रत्यय से अनेक कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति 'काल-वादी' कहलाता है, 'सत्य-वादी' कहलाता है, 'अर्थ-वादी' कहलाता है, 'धर्म-वादी' कहलाता है, 'विनय-वादी'

कहलाता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति 'काल-वादी' भी, 'सत्य-वादी' भी, 'अर्थ-वादी' भी, 'धर्म-वादी' भी 'विनय-वादी' भी क्यों कहलाता है? क्योंकि यह व्यक्ति दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, सच्ची बात कही जाने पर उसे स्वीकार करता है, अस्वीकार नहीं करता, झूठी बात कही जाने पर उस आरोप से मुक्त होने का प्रयास करता है कि यह असत्य है, यह अभूत है। इसलिए इस प्रकार का व्यक्ति 'काल-वादी' भी, 'सत्य-वादी' भी, 'अर्थ-वादी' भी, 'धर्म-वादी' भी, 'विनय-वादी' भी कहलाता है।

"भिक्षुओ, इस प्रकार के व्यक्ति के लोभज पापी अकुशल धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं, उनकी जड़ें उच्छिन्न हो गयी रहती हैं, वे कटे ताड़-वृक्ष के समान हो गये रहते हैं, अभाव को प्राप्त हो गये रहते हैं, भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है। इस प्रकार के व्यक्ति के द्वेषज... मोहज पापी अकुशल-धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं... भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है।

"भिक्षुओ, जैसे चाहे शाल-वृक्ष हो, चाहे धव-वृक्ष हो और चाहे स्पंदन-वृक्ष हो और उस पर तीन मालुवा लतायें चढ़ी हों, वह मालुवा-लता से घिरा हो। तब एक व्यक्ति कुदाल और टोकरी लिए आये। वह उस मालुवा-लता की जड़ काट दे, जड़ काटकर खने, खनकर जड़ों को निकाल डाले, यहां तक कि वीरण-घास भी। वह उस मालुवा लता के टुकड़े-टुकड़े करे, टुकड़े-टुकड़े करके उसे चीर डाले, चीरकर खपचियां-खपचियां कर दे, खपचियां-खपचियां करके हवा-धूप में सुखाये, हवा-धूप में सुखाकर आग से जलाये, आग से जलाकर राख कर दे, राख करके या तो तेज हवा में उड़ा दे या शीघ्रगामी नदी में बहा दे। ऐसा होने पर भिक्षुओ, वह मालुवा-लता जड़-मूल से नहीं रहेगी, कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो जायगी, अभावप्राप्त हो जायगी, उसकी भावी उत्पत्ति की संभावना नहीं रहेगी। इस तरह भिक्षुओ, इस प्रकार के व्यक्ति के लोभज पापी अकुशल-धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं, उनकी जड़ें उच्छिन्न हो गयी रहती हैं, वे कटे ताड़-वृक्ष के समान हो गये रहते हैं, अभाव को प्राप्त हो गये रहते हैं, भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी

जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है। इस प्रकार के व्यक्ति के द्वेषज... मोहज पापी अकुशल-धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं... भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है।

"भिक्षुओ, ये तीन कुशल-मूल हैं।"

१०. उपोसथ सुत्त

७१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में विहार कर रहे थे। उस समय विसाखा मिगार-माता उपोसथ के दिन भगवान के पास गयी। जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी मिगार-माता विसाखा को भगवान ने यह कहा – विसाखे! आज तू दिन चढ़ते (दोपहर) कैसे आयी?"

"भंते! आज मैंने उपोसथ रखा है।"

"विसाखे! उपोसथ तीन प्रकार का होता है। कौन-से तीन प्रकार का? गोपाल-उपोसथ, निर्ग्रंथ-उपोसथ तथा आर्य-उपोसथ।

"विसाखे! गोपाल-उपोसथ कैसे होता है? विसाखे! जैसे कोई ग्वाला शाम को मालिकों को उनकी गौवें सौंप कर यह सोचे कि आज इन गौवों ने अमुक-अमुक जगह चराई की, आज इन गौवों ने अमुक-अमुक जगह पानी पिया। कल ये गौवें अमुक-अमुक जगह चरेंगी तथा अमुक-अमुक जगह पानी पियेंगी। इसी प्रकार विसाखे! यहां कोई-कोई उपोसथ करने वाला ऐसा सोचता है – आज मैंने यह-यह खाया तथा यह-यह भोजन किया। कल मैं यह-यह खाऊंगा तथा यह-यह भोजन करूंगा। वह उस लोभयुक्त चित्त से दिन गुजार देता है। विसाखे! इस प्रकार गोपाल-उपोसथ होता है। विसाखे! इस प्रकार के गोपाल-उपोसथ का न महान फल होता है, न महान लाभ होता है, न तो यह महान प्रकाश वाला होता है और न बहुत दूर तक व्याप्त होने वाला होता है।

"हे विसाखे! निर्ग्रंथ-उपोसथ कैसे होता है?

"हे विसाखे! निर्ग्रंथ नामक श्रमणों की एक जाति है, वे अपने मतानुयायिओं को इस प्रकार उपदेश देते हैं – 'हे पुरुष! तू आ। पूर्व दिशा में सौ योजन से अधिक योजन तक (सौ योजन से परे) जितने प्राणी हैं तू उन्हें दंड से मुक्त कर, पश्चिम दिशा में सौ योजन से अधिक योजन तक जितने प्राणी हैं, तू उन्हें दंड से मुक्त कर, उत्तर दिशा में सौ योजन से अधिक योजन तक जितने प्राणी हैं तू उन्हें दंड से मुक्त कर तथा दक्षिण दिशा में सौ योजन से

अधिक योजन तक जितने प्राणी हैं तू उन्हें दंड से मुक्त कर। इस प्रकार कुछ प्राणियों के प्रति दया उपदेशित करते हैं, कुछ के प्रति दया उपदेशित नहीं करते। वे उपोसथ-दिन पर श्रावक को इस प्रकार उपदेश देते हैं –'हे पुरुष! तू आ। सभी वस्त्रों को त्याग कर इस प्रकार कह –"न मैं कहीं, किसी का कुछ हूं, और न मेरा कहीं, कोई कुछ है।" किंतु उसके माता-पिता जानते हैं कि यह मेरा पुत्र है और पुत्र भी जानता है कि ये मेरे माता-पिता हैं। उसके पुत्र और स्त्री उसे पिता और पति के रूप में जानते हैं और वह भी जानता है कि ये मेरे पुत्र और स्त्री हैं। उसके दास-नौकर-चाकर भी जानते हैं कि यह हमारा मालिक है और वह भी जानता है कि ये मेरे दास-नौकर-चाकर हैं। इस प्रकार जिस समय सत्य उपदेश देना चाहिए उस समय झूठा उपदेश देते हैं, इसको मैं उसका झूठ बोलना कहता हूं। उस रात्रि के बीतने पर वह उन (त्यक्त) वस्तुओं को बिना किसी के दिये ही उपयोग में लाते हैं। इसको मैं उसका चोरी करना कहता हूं। इस प्रकार हे विसाखे! यह निर्ग्रंथ-उपोसथ होता है। विसाखे! इस प्रकार के उपोसथ का न महान फल होता है, न महान लाभ होता है, न तो यह महान प्रकाश वाला होता है तथा न बहुत दूर तक व्याप्त होने वाला होता है।

"हे विसाखे! आर्य-उपोसथ कैसे होता है?

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। कैसे विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक तथागत का अनुस्मरण करता है –'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अरहंत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्व-श्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।' इस प्रकार तथागत का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद (प्रमोद) उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है जैसे विसाखे! मैला सिर उपाय से निर्मल होता है।

"विसाखे! मैले सिर को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? खल्ली होने से, मिट्टी होने से, पानी होने से तथा व्यक्ति के प्रयत्न से। हे विसाखे! इस प्रकार मैले सिर को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक तथागत का अनुस्मरण करता है –'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अरहंत, 'सम्यक-संबुद्ध', विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्व-श्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह)

भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), 'बुद्ध', भगवान।' इस प्रकार तथागत का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है, जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक ब्रह्म-उपोसथ रखता है, ब्रह्मा के साथ रहता है, 'ब्रह्मा' के बारे में सोचकर उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इस प्रकार विसाखे! मैले-चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक धर्म का अनुस्मरण करता है – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है) निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।' इस प्रकार धर्म का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है, जैसे विसाखे! मैले बदन को उपाय से साफ किया जाता है।

"विसाखे! मैले बदन को उपाय से साफ कैसे किया जाता है? शंख से, चूने से, पानी से तथा व्यक्ति के प्रयत्न से। विसाखे! इस प्रकार मैला बदन क्रमशः निर्मल होता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक धर्म का अनुस्मरण करता है – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।' इस प्रकार धर्म का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक धर्म-उपोसथ रखता है, धर्म के साथ रहता है, धर्म को लेकर उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इस प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक संघ का अनुस्मरण करता है – सुमार्ग पर चलने वाला भगवान का श्रावक-संघ, ऋजुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है। इस प्रकार संघ का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है जैसे विसाखे! मैले वस्त्र को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले वस्त्र को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? गर्म पानी होने से, खारी मिट्टी तथा गोबर होने से, पानी (साधारण) होने से तथा व्यक्ति के प्रयत्न से। विसाखे! इस प्रकार मैला वस्त्र उपाय से निर्मल होता है। विसाखे! इसी प्रकार मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक संघ का अनुस्मरण करता है – सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष-पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है। इस प्रकार संघ का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे इसे कहा जाता है -- आर्य-श्रावक संघ-उपोसथ करता है, संघ के साथ रहता है, संघ के बारे में सोच कर चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। यहां, विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक अपने शीलों का अनुस्मरण करता है – 'अखंडित, छिद्र-रहित,

बिना धब्बे के, पवित्र, शुद्ध, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित, अकलंकिततथा समाधि की ओर ले जाने वाले!' शील का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। जैसे विसाखे! मैले शीशे को उपाय से साफ किया जाता है।

"विसाखे! मैले शीशे को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? तेल से, राख से, बालों के गुच्छे से और व्यक्ति के प्रयत्न से। विसाखे! इस प्रकार मैले शीशे को उपाय से साफ किया जाता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक अपने शीलों का अनुस्मरण करता है – 'अखंडित,... समाधि की ओर ले जाने वाले।' इस प्रकार शील का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रसन्न होता है... प्रहाण होता है। विसाखे! इसे कहा जाता है -- आर्य श्रावक शील-उपोसथ करता है, शील के साथ रहता है, शील में श्रद्धा उत्पन्न करता है, आनंद उत्पन्न करता है, जो चित्त के क्लेशों का प्रहाण करते हैं। विसाखे! इस प्रकार मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक देवताओं का अनुस्मरण करता है –'चातुम्महाराजिक देवता हैं, तावतिंस देवता हैं, याम देवता हैं, तुषित देवता हैं, निम्मान-रति देवता हैं, परनिम्मितवसवत्ती देवता हैं, ब्रह्मकायिक देवता हैं, और इससे आगे भी देवता हैं। जिस प्रकार की श्रद्धा से समन्वागत (युक्त) वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की श्रद्धा है; जिस प्रकार के शील से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार का शील है; जिस प्रकार के श्रुत (=ज्ञान) से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार का ज्ञान है, जिस प्रकार के त्याग से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं; मुझमें भी उसी प्रकार का त्याग है; जिस प्रकार की प्रज्ञा से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की प्रज्ञा है।' अपनी और उन देवताओं की श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग तथा प्रज्ञा का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है, जैसे विसाखे! मलिन सोने को उपाय से साफ किया जाता है।

"विसाखे! मलिन सोने को उपाय से साफ कैसे किया जाता है? अंगीठी होने से, नमक होने से, गेरू होने से, धौंकनी होने से, संडासी होने से तथा उसके लिए व्यक्ति का प्रयास होने से। विसाखे! इस प्रकार मलिन सोने को उपाय से साफ किया जाता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक देवताओं का अनुस्मरण करता है – 'चातुम्महाराजिक देवता हैं, तावतिंस देवता हैं... इससे आगे भी देवता हैं। जिस प्रकार की श्रद्धा से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की श्रद्धा है; जिस प्रकार के शील... श्रुत... त्याग... प्रज्ञा से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की प्रज्ञा है।' इस प्रकार अपनी और उन देवताओं की श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग तथा प्रज्ञा का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे इसे कहा जाता है – आर्य-श्रावक देवता-उपोसथ करता है, देवता के साथ रहता है, देवता में श्रद्धा उत्पन्न करता है। देवता के बारे में सोच कर चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! वह आर्य-श्रावक यह विचार करता है – 'अर्हत जीवनभर प्राणी-हिंसा छोड़, प्राणी-हिंसा से विरत होकर, दंड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, पाप-भीरु, दयावान, सभी प्राणियों का हित और उन पर अनुकंपा करते विचरते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन प्राणी-हिंसा छोड़, प्राणी-हिंसा से विरत होकर, दंड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, पाप-भीरु, दयावान होकर सभी प्राणियों का हित और उन पर अनुकंपा करते हुए विहार करूं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर चोरी करना छोड़, चोरी करने से विरत रह, केवल दिया ही लेने वाले, दिये की ही आकांक्षा करने वाले, चोरी न कर, पवित्र जीवन बिताते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन चोरी करना छोड़, चोरी करने से विरत रह, केवल दिया ही लेने वाला, दिये की ही आकांक्षा करने वाला, चोरी न कर, पवित्र जीवन बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर अब्रह्मचर्य छोड़, ब्रह्मचारी, अनाचार-रहित, मैथुन ग्राम्य-धर्म से विरत रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन अब्रह्मचर्य छोड़, ब्रह्मचारी, अनाचार-रहित, मैथुन ग्राम्य-धर्म से विरत रहकर बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर मृषावाद छोड़, मृषावाद से विरत होकर, कभी झूठ न बोलने वाला दृढ़ (अटल), विश्वसनीय, तथा लोक को धोखा न देने वाला होकर रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन मृषावाद छोड़, मृषावाद से विरत होकर, सत्य-वादी, झूठ न बोलने वाला, स्थिर, दृढ़ (अटल) विश्वसनीय, तथा लोक को धोखा न देने वाला होकर रहूं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं को छोड़, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं से विरत होकर रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं से विरत होकर रहूं। इस अंश में मैं भी अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर एकाहारी, रात्रि-भोजन-त्यक्त, विकाल-भोजन से विरत होकर रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन एकाहारी, रात्रि-भोजन-त्यक्त, विकाल-भोजन से विरत होकर बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर नाचने, गाने, बजाने, तमाशे देखने, माला-गंध-विलेपन धारण-मंडन आदि जो विभूषित करने के सामान हैं उनसे विरत रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन नाचने, गाने, बजाने, तमाशा देखने, माला-गंध-विलेपन धारण-मंडन आदि जो विभूषित करने के सामान हैं उनसे विरत रहकर बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर उच्च शय्या, महा शय्या को छोड़, उच्च शय्या, महा शय्या से विरत होकर, नीचा शयनासन – चारपाई या चटाई को ही काम में लाते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन उच्च शय्या, महा शय्या को छोड़, उच्च शय्या, महा शय्या से विरत होकर, नीचा शयनासन – चारपाई या चटाई को ही काम में लाऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।'

"विसाखे! इस प्रकार आर्य-उपोसथ होता है। विसाखे! इस प्रकार रखा गया आर्य-उपोसथ महान फलवाला होता है, महान लाभ वाला होता है, यह महान प्रकाश वाला होता है तथा बहुत दूर तक व्याप्तहोने वाला होता है।"

"कितनेमहान फलवाला होता है, कितनेमहान लाभ वाला होता है, कितने महान प्रकाशवाला होता है तथा कितनीदूर तक व्याप्त होने वाला होता है?"

"विसाखे! जैसे कोई इन सोलह महान सप्त-रत्न-बहुल महाजनपदों का ऐश्वर्याधिपत्य राज्य करे–जैसे अंगों का, मगधों का, काशियोंका, कोशलोंका, वज्जियों का, मल्लों का, चेदियों का, वंगों का, कुरुओंका, पंचालों का, मत्स्यों का, शौरसेनों का, अश्मकोंका, अवंतियों का, गंधारों का तथा कंबोजोंका – वह अष्टांग उपोसथ के सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं होता। यह किसलिए विसाखे! दिव्य-सुख कीतुलना में मानुषी-राज्य बिचारे काकुछमूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का पचास वर्ष होता है, वह चातुम्महाराजिक देवताओं काएक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से पांच सौ वर्ष चातुम्महाराजिक देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद चातुम्महाराजिक देवताओं कासहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का सौ वर्ष होता है, वह तावतिंस देवताओं काएक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों कामहीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष! उस वर्ष से हजार दिव्य वर्ष, तावतिंस देवताओं कीआयु कीसीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद तावतिंस देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख कीतुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का दो सौ वर्ष होता है, वह याम-देवताओं काएक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों कामहीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से दो हजार दिव्य-वर्ष, याम देवताओं कीआयु कीसीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद याम-देवताओं कासहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया है कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का चार सौ वर्ष होता है, वह तुषित देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से चार हजार दिव्य-वर्ष, तुषित-देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद तुषित-देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का आठ सौ वर्ष होता है, वह निम्मान-रति देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से आठ हजार दिव्य-वर्ष, निम्मान-रति देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद निम्मान-रति देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का सोलह सौ वर्ष होता है, वह परनिम्मितवसवत्ती देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से सोलह हजार वर्ष परनिम्मितवसवत्ती देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद, परनिम्मितवसवत्ती देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।"

"पाणं न हञ्ञे न चादिन्नमादिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय्य विकालभोजनं॥

"मालं न धारे न च गन्धमाचरे, मञ्चे छमायं व सयेथ सन्थते।
एतञ्हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं, बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं॥

"चन्दो च सुरियो च उभो सुदस्सना, ओभासयं अनुपरियन्ति यावता।
तमोनुदा ते पन अन्तलिक्खगा, नभे पभासन्ति दिसाविरोचना॥

"एतस्मिं यं विज्जति अन्तरे धनं, मुत्ता मणि वेळुरियञ्च भद्दकं।
सिङ्गी सुवण्णं अथ वापि कञ्चनं, यं जातरूपं हटकन्ति वुच्चति॥

"अट्ठङ्गुपेतस्स उपोसथस्स, कलम्पि ते नानुभवन्ति सोळसिं।
चन्दप्पभा तारगणा च सब्बे॥

"तस्मा हि नारी च नरो च सीलवा, अट्ठङ्गुपेतं उपवस्सुपोसथं।
पुञ्ञानि कत्वान सुखुद्रयानि, अनिन्दिता सग्गमुपेन्ति ठान"न्ति॥

["प्राणी-हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, मद्यप न होवे। अब्रह्मचर्य, मैथुन से विरत रहे। रात्रि को विकाल-भोजन न करे। माला न पहने। सुगंधि न धारण करे।मंच पर या बिछी-भूमि पर सोये। बुद्ध ने दुःख का अंत करने वाले इस अष्टांग-उपोसथ को प्रकाशित किया है। चंद्रमा तथा सूर्य दोनों सुदर्शन हैं। वे जहां तक (संभव है, वहां तक) प्रकाश फैलाते हैं। वे अंतरिक्षगामी हैं। अंधकार के विध्वंसक हैं। वे आकाश की सभी दिशाओं को आलोकित करते हैं। और यहां इस बीच में जो कुछ भी मुक्ता, मणि तथा बिल्लौर धन, स्फटिक है, शुद्ध कंचन, स्वर्ण, जो जातरूप वा हाटक भी कहलाता है, वह तथा चंद्रमा का प्रकाश और सभी तारागण अष्टांग-उपोसथ पालन करने वाले के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं होते। इसलिए जो सदाचारी नारी और नर हैं वे अष्टांग उपोसथ का पालन कर,तथा सुख-दायक पुण्य-कर्म कर, अनिंदित रह, स्वर्ग-स्थान को प्राप्त होते हैं।"]

* * * * *

(८) ३. आनन्द वर्ग

१. छन्न सुत्त

७२. एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब छन्न परिव्राजक आयुष्मान आनन्द के पास पहुँचा। पहुँच कर,आयुष्मान आनन्द के साथ कुशलक्षेम की बातचीत करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए छन्न परिव्राजक ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –

"आयुष्मान आनन्द! आप भी राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष... मोह के प्रहाण की बात करते हैं। आयुष्मान! हम भी राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष... मोह के प्रहाण की बात करते हैं।

"आयुष्मान! आप राग में क्या दोष देखकर राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष में क्या दोष... मोह में क्या दोष देखकर मोह के प्रहाण की बात करते हैं?"

"आयुष्मान! जो राग से अनुरक्त है, जो राग से अभिभूत है वह अपने दुःख की भी बात सोचता है, पराये दुःख की भी बात सोचता है, दोनों के दुःख की भी बात सोचता है, वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। राग

का प्रहाण होने पर न वह अपने दुःख की बात सोचता है, न पराये दुःख की बात सोचता है, न दोनों के दुःख की बात सोचता है; वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव नहीं करता है।

"आयुष्मान! जो राग से अनुरक्त है, जो राग से अभिभूत है वह कायिक दुष्कर्मक रता है, वाचिक दुष्कर्मक रता है, मानसिक दुष्कर्मक रता है। राग का प्रहाण होने पर न वह कायिक दुष्कर्मक रता है, न वाचिक दुष्कर्मक रता है और न मानसिक दुष्कर्मक रता है।

"आयुष्मान! जो राग से अनुरक्त है, जो राग से अभिभूत है वह अपना हित भी यथार्थ रूप से नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी नहीं पहचानता है। राग का प्रहाण होने पर वह यथार्थ रूप से अपना हित भी पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी पहचानता है।

"आयुष्मान! जो राग है वह अंधा बना देने वाला है, चक्षु-रहित कर देने वाला है, अज्ञानी बना देने वाला है, प्रज्ञा का नाश कर देने वाला है, हानि पहुँचाने वाला है, निर्वाण-मार्ग की ओर ले जाने वाला नहीं है।

"आयुष्मान! जो द्वेष से दुष्ट है जो द्वेष से अभिभूत है वह... निर्वाण-मार्ग की ओर ले जाने वाला नहीं है।

"आयुष्मान! जो मोह से मूढ़ है, मोह से अभिभूत है वह अपने दुःख की भी बात... पराये दुःख... दोनों के दुःख की भी बात सोचता है, वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर न वह अपने दुःख की बात सोचता है... न पराये दुःख... न दोनों के दुःख की बात सोचता है, वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव नहीं करता।

"आयुष्मान! जो मोह से मूढ़ है, मोह से अभिभूत है वह कायिक दुष्कर्मक रता है, वाचिक दुष्कर्मक रता है, मानसिक दुष्कर्मक रता है। मोह का प्रहाण होने पर, न वह कायिक दुष्कर्मक रता है, न वाचिक दुष्कर्मक रता है और न मानसिक दुष्कर्मक रता है।

"आयुष्मान। जो मोह से मूढ़ है, जो मोह से अभिभूत है वह यथार्थ रूप से अपना हित भी नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी नहीं पहचानता है। मोह का प्रहाण होने पर वह यथार्थ रूप से अपना हित भी पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी पहचानता है।

"आयुष्मान! जो मोह है वह अंधा बना देने वाला है, चक्षु-रहित कर देने वाला है, अज्ञानी बना देने वाला है, प्रज्ञा का नाश कर देने वाला है, हानि पहुँचाने वाला है, निर्वाण-मार्ग की ओर ले जाने वाला नहीं है।

"आयुष्मान! हम राग का यह खतरा (पालि 'आदीनव' का अर्थ है संकट, भय, बुरा परिणाम) देखकर राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष का यह खतरा देखकर द्वेष के प्रहाण की बात करते हैं, तथा मोह का यह खतरा देखकर मोह के प्रहाणकी बात करते हैं।"

"आयुष्मान! क्या इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण का पथ है, मार्ग है?"

"आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण का पथ है, मार्ग है।"

"आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण के लिए कौन-सा पथ है, कौन-सा मार्ग है?"

"यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग जो कि है –सम्यक दृष्टि... सम्यक समाधि। आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण के लिए यह पथ है, यह मार्ग है।"

"आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण का यह श्रेष्ठ-पथ है, श्रेष्ठ-मार्ग है। आनन्द! यह अप्रमादी बने रहने के लिए पर्याप्त है।"

२. आजीवक सुत्त

७३. एक समय आयुष्मान आनन्द कोशाम्बी के घोषिताराम में विहार कर रहे थे।

उस समय आजीवक संप्रदाय का एक गृहस्थ शिष्य आयुष्मान आनन्द के पास आया। पास जाकर आयुष्मान आनन्द को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस आजीवक गृहस्थ शिष्य ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –

"भंते आनन्द! वास्तव में किसका धर्म सु-आख्यात (भली प्रकार कहा गया) है? संसार में कौन ठीक मार्ग पर चलते हैं? संसार में कौन सुकर्मी हैं?"

"तो गृहपति! मैं तुझसे ही पूछता हूं, जैसा तुझे लगे वैसा कहना। तो हे गृहपति! तू क्या मानता है कि जो राग के प्रहाण का उपदेश देते हैं, द्वेष के प्रहाण का उपदेश देते हैं तथा मोह के प्रहाण का उपदेश देते हैं उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जो राग के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, द्वेष के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है ऐसी मेरी राय है।"

"हे गृहपति! क्या मानते हो जो राग के प्रहाण में लगे हैं, जो द्वेष के प्रहाण में लगे हैं, जो मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जो राग के प्रहाण में लगे हैं, जो द्वेष के प्रहाण में लगे हैं, जो मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं ऐसी मेरी राय है।"

"हे गृहपति! क्या मानते हो जिनका राग प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; जिनका द्वेष प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है; जिनका मोह प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे संसार में सुकर्मी हैं या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जिनका राग प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; जिनका द्वेष प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है; जिनका मोह प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे संसार में सुकर्मी हैं, ऐसी मेरी राय है।"

"अब तू ही यह कह रहा है –'भंते! जो राग के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, द्वेष के ...मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है।' तू ही यह कह रहा है –'भंते! जो राग के प्रहाण में लगे हैं, जो द्वेष के ...जो मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं।' तू ही यह कह रहा है, 'भंते! जिनका राग प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; जिनका द्वेष प्रहीण... जिनका मोह प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे लोक में सुकर्मी हैं।"

"भंते! आश्चर्य है। भंते! अद्भुत है। अपने मत को ऊपर भी नहीं उठाया है और दूसरे के मत को नीचे भी नहीं गिराया है। उचित क्षेत्र में धर्म-देशना मात्र हुई है। (कल्याण की) बात कह दी गयी। अपने-आप को बीच में नहीं लाया गया।

"भंते आनन्द! आप लोग राग के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, द्वेष के ...मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, (इसलिए) भंते! आप लोगों का धर्म 'भली प्रकार कहा गया' (सु-आख्यात) है। भंते! आनन्द! आप लोग राग के प्रहाण में प्रतिपन्न हैं, द्वेष के ... मोह के प्रहाण में प्रतिपन्न हैं, आप लोग संसार में ठीक मार्ग पर चल रहे हैं। भंते! आनन्द! आप लोगों का राग प्रहीण है, जड़ से जाता रहा है, कटेताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; आप लोगों का द्वेष... आप लोगों का मोह प्रहीण है, जड़ से जाता रहा है, कटेताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, (इसलिए) आप लोग सुकर्मी हैं।

"सुंदर, भंते! बहुत सुंदर, भंते! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार आर्य आनन्द ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। भंते आनन्द! मैं उन भगवान, धर्म तथा भिक्षु-संघ की शरण जाता हूं। आर्य आनन्द! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

३. महानाम शाक्य सुत्त

७४. ऐसा मैंने सुना –एक समय भगवान शाक्य जनपद में, कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहार करते थे। उस समय भगवान रोग से मुक्त हुए थे, रोग से मुक्त हुए थोड़ा ही समय हुआ था। तब महानाम शाक्य भगवान के पास पहुँचा। पास जाकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए महानाम शाक्य ने भगवान को यह कहा –

"भंते! मैं जानता हूं कि भगवान ने दीर्घकाल से यह उपदेश दिया है कि समाहित-चित्त (वाले) को ही ज्ञान होता है, असमाहित-चित्त (वाले) को नहीं। भंते, क्या समाधि पहले होती है और तब ज्ञान होता है, अथवा ज्ञान पहले होता है और तब समाधि होती है?"

उस समय आयुष्मान आनन्द के मन में यह हुआ –भगवान रोग से मुक्त हुए हैं, भगवान को रोग से मुक्त हुए थोड़ा ही समय हुआ है। यह महानाम शाक्य भगवान से अति गंभीर प्रश्न पूछ रहा है। क्यों न मैं महानाम शाक्य को एक ओर ले जाकर धर्मोपदेश दूं? तब आयुष्मान आनन्द महानाम शाक्य को बांह से पकड़कर एक ओर ले गये और महानाम्शाक्य से यह बोले –

"महानाम! भगवान ने शैक्ष-शील का भी उपदेश किया है, अशैक्ष-शील का भी उपदेश किया है, शैक्ष-समाधि का भी उपदेश किया है, अशैक्ष-समाधि का भी उपदेश किया है, शैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश किया है, अशैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश किया है।

"महानाम! शैक्ष-शील क्या है?

"यहां, हे महानाम! भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष... शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला... महानाम! यह शैक्ष-शील कहलाता है।

"और, महानाम! शैक्ष-समाधि क्या है?

"यहां, महानाम! भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान प्राप्त करता है। महानाम! यह शैक्ष-समाधि कहलाती है।

"महानाम! शैक्ष-प्रज्ञा क्या है?

"यहां, महानाम! भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-निरोध है', इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथाभूत जानता है। महानाम! यह शैक्ष-प्रज्ञा है।

"अब महानाम! वह आर्य-श्रावक शील-संपन्न, समाधि-संपन्न तथा प्रज्ञा-संपन्न होकर आस्रवों का क्षय कर चुकने के अनंतर अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में, स्वयं जानकर, साक्षात कर, सम्यक रूप से प्राप्त कर विहार करता है। इस प्रकार महानाम! भगवान ने शैक्ष-शील का भी उपदेश दिया है, अशैक्ष-शील का भी उपदेश दिया है; शैक्ष-समाधि का भी उपदेश दिया है, अशैक्ष-समाधि का भी उपदेश दिया है, शैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश दिया है, अशैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश दिया है।"

४. निर्ग्रंथ सुत्त

७५. एक समय आयुष्मान आनन्द वैशाली के महावन में, कूटागारशाला में विहार करते थे। उस समय अभय लिच्छवी तथा पंडितकुमारक लिच्छवी आयुष्मान आनन्द के पास पहुँचे। पहुँच कर आयुष्मान आनन्द को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे लिच्छवी अभय ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –

"भंते! नाटपुत्र निर्ग्रंथ का कहना है कि वे सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, उन्हें असीम ज्ञान-दर्शन प्राप्त है। उनका कहना है – मुझे चलते समय, खड़े रहते, सोते, जागते, सतत, लगातार ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। वे प्रज्ञापन करते

हैं कि तपस्या से पुराने कर्मों का नाश हो जाता है और नये कर्मों के न करने के कारण दूसरे भव को जोड़ने वाला सेतु टूट जाता है। इस प्रकार कर्म के क्षय होने से दुःख का क्षय, दुःख के क्षय होने से वेदना का क्षय, वेदना के क्षय होने से सारे दुःख की निर्जरा होती है। इस प्रकार इस सांदृष्टिक निर्जरा-विशुद्धि से (दुःख का) समतिक्रमण होता है। भंते! भगवान इस विषय में क्या कहते हैं?"

"अभय! उन भगवान, ज्ञानी, दर्शी, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध द्वारा ये तीन निर्जरा-विशुद्धियां सम्यक प्रकार कही गयी हैं, प्राणियों की विशुद्धि के लिए, शोक तथा क्रंदन के समतिक्रमण के लिए, दुःख-दौर्मनस्य के नाश के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए और निर्वाण को साक्षात करने के लिए। कौन-सी तीन?

"यहां, हे अभय! भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष... शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला। वह नया कर्म नहीं करता है और पुराने कर्मों को छू-छू कर समाप्त कर देता है।[1] (उदीर्ण कर्मसंस्कारों को संवेदनाओं के स्तर पर तटस्थभाव से देख-देखकर निर्जरा कर देता है।) यह सांदृष्टिक निर्जरा है, अकालिक (देश और काल की सीमाओं से परे) है, इसके बारे में कहसकते हैं कि 'आओ और स्वयं परीक्षा कर लो, यह निर्वाण की ओर ले जाने वाली है, इसे प्रत्येक विज्ञ व्यक्ति साक्षात कर सकता है'।

"हे अभय! अब वह शील-संपन्न भिक्षु कामभोगों से दूर हो... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है! वह नया कर्म नहीं करता है और पुराने कर्मों को छू-छू कर समाप्त कर देता है। यह सांदृष्टिक निर्जरा है, तत्काल फलदायक है। 'आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है'।

"हे अभय! अब वह समाधिसंपन्न भिक्षु आस्रवों का क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं सम्यक रूप से जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। वह नया कर्म नहीं करता है और पुराने कर्मों को छू-छू कर समाप्त कर देता है। यह सांदृष्टिक निर्जरा है, अकालिक

१ पालि में **पुराणञ्च कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरोति** है। इसका अर्थ तब तक ठीक से नहीं समझा जा सकता जब तक विपश्यना का अनुभव न हो। पुराने कर्मों के फल को साधक साधारणतया संवेदनाओं को तटस्थभाव से देखकर समाप्त करते हैं। राग और द्वेष के संस्कार जो भीतर चट्टान की परतों की तरह हैं वे विपश्यना साधना द्वारा ऊपर आते हैं। यदि उन्हें तटस्थ भाव से देखें तो वे तो समाप्त होते ही हैं और नये संस्कार इसलिए नहीं बन पाते क्योंकि उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। राग और द्वेष की वृद्धि प्रतिक्रिया से होती है। यदि और जलावन डालेंगे तो आग बढ़ेगी ही, पर यदि जलावन डालना छोड़ दें तो आग जल कर बुझ जायगी।

(देश और कालकी सीमाओं से परे) है, इसके बारे में कहसकतेहैं कि 'आओ और स्वयं परीक्षा करलो, यह निर्वाण की ओर ले जाने वाली है, इसे प्रत्येक विज्ञ व्यक्ति साक्षात कर सकता है'।

"अभय! उन भगवान, ज्ञानी, दर्शी, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध द्वारा ये तीन निर्जरा-विशुद्धियां सम्यक प्रकार कही गई हैं, प्राणियों की विशुद्धि के लिए, शोक तथा क्रंदन के समतिक्रमण के लिए, दुःख-दौर्मनस्य के नाश के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए और निर्वाण को साक्षात करने के लिए।"

ऐसे कहे जाने पर पंडितकुमारक लिच्छवी ने अभय लिच्छवी को यह कहा –

"सौम्य अभय! क्या तू आयुष्मान आनन्द के सुभाषित को सुभाषित कह कर अनुमोदन नहीं करता?"

"सौम्य! मैं आयुष्मान आनन्द के सुभाषित को सुभाषित की तरह अनुमोदन कैसे नहीं करूंगा? जो आयुष्मान आनन्द के सुभाषित को सुभाषित की तरह अनुमोदन न करे, उसका सिर टुकड़े-टुकड़े हो सकता है।"

५. परामर्श सुत्त

७६. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने यह कहा –

"आनन्द! जिसे अनुकंपा करने योग्य समझो और जो तुम्हें सुनने योग्य मानें – चाहे वे मित्र हों, चाहे सुहृद हों, चाहे रिश्तेदार हों, चाहे रक्त-संबंधी (परिवार) हों, उन्हें आनन्द! तीन बातों की सलाह देनी चाहिए, तीन बातों में स्थापित करना चाहिए, प्रतिष्ठित करना चाहिए। किन तीन बातों में?

"बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए... प्रतिष्ठित करना चाहिए – 'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अरहंत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्व-श्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।' धर्म के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए... प्रतिष्ठित करना चाहिए – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।' संघ

के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए – 'सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फलप्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।'

"आनन्द! पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु तथा वायु-धातु का 'अन्यथात्व' (परिवत्तितिरूप) हो सकता है, किंतु बुद्ध में अचल श्रद्धा रखने वाले आर्य-श्रावक का नहीं। इस विषय में 'अन्यथात्व' का अभिप्राय यह है, आनन्द! बुद्ध में अचल श्रद्धा रखने वाला आर्य-श्रावक नरक में पैदा होगा, पशु-योनि में पैदा होगा या प्रेत-योनि में पैदा होगा –इसकी संभावना नहीं है।

"आनन्द! पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु तथा वायु-धातु का 'अन्यथात्व' हो सकता है, किंतु धर्म में... संघ में अचल श्रद्धा रखने वाले आर्य-श्रावक का नहीं। इस विषय में 'अन्यथात्व' का अभिप्राय यह है, आनन्द! संघ में अचल श्रद्धा रखने वाला आर्य-श्रावक नरक में पैदा होगा, पशु-योनि में पैदा होगा या प्रेत-योनि में पैदा होगा –इसकी संभावना नहीं है।

"आनन्द! जिसे अनुकंपा करने योग्य समझो और जो तुम्हें सुनने योग्य मानें – चाहे वे मित्र हों, चाहे सुहृद हों, चाहे रिश्तेदार हों, चाहे रक्त-संबंधी हों –उन्हें आनन्द! इन तीन बातों की सलाह देनी चाहिए, उनमें स्थापित करना चाहिए, प्रतिष्ठित करना चाहिए।"

६. भव सुत्त (प्रथम)

७७. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! 'भव', 'भव' कहा जाता है। क्या होने से भव होता है?"

"आनन्द! यदि काम-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या काम-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र (खेत) है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों का हीन (काम) धातु

में विज्ञान स्थापित होता है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि रूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या रूप-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों का मध्यम (रूप) धातु में विज्ञान स्थापित होता है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि अरूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या अरूप-भव दिखाई देगा?"

"भंते। नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों का श्रेष्ठ (अरूप) धातु में विज्ञान स्थापित होता है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।"

७. भव सुत्त (द्वितीय)

७८. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! 'भव', 'भव' कहा जाता है। क्या होने से भव होता है?"

"आनन्द! यदि काम-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या काम-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों की हीन (काम) धातु में चेतना स्थापित होती है, कामना (तृष्णा) स्थापित होती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि रूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या रूप-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों की मध्यम (रूप) धातु में चेतना स्थापित होती है, कामना तृष्णा स्थापित होती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि अरूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या अरूप-धातु दिखाई देगा?"

"भंते। नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों की श्रेष्ठ (अरूप) धातु में चेतना स्थापित होती है, कामना (तृष्णा) स्थापित होती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।"

८. शीलव्रत सुत्त

७९. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने इस प्रकार कहा –

"आनन्द! क्या सभी प्रकार के शील-व्रत, सभी प्रकार की जीवन शैली, सभी प्रकार के ब्रह्मचर्य, सभी प्रकार के उपस्थान-सार (सेवा) सफल होते हैं?"

"भंते! सर्वांश में यह ऐसा नहीं है।"

"तो आनन्द! विभक्त करके कहो।"

"भंते! जिस शील-व्रत से, जिस जीवन शैली से, जिस ब्रह्मचर्य के पालन करने से, जिस उपस्थान-सार (सेवा) से अकुशल-धर्म बढ़ते हैं तथा कुशल-धर्म प्रहीण होते हैं, वह शील-व्रत, वह जीवन शैली, वह ब्रह्मचर्य, वह उपस्थान-सार निष्फल हैं। जिस शील-व्रत से, जिस जीवन शैली से जिस ब्रह्मचर्य से, जिस उपस्थान-सार से अकुशल-धर्म प्रहीण होते हैं तथा कुशल-धर्म बढ़ते हैं, वह शील-व्रत, वह जीवन शैली, वह ब्रह्मचर्य, वह उपस्थान-सार सफल होते हैं।

आयुष्मान आनन्द ने यह कहा। शास्ता संतुष्ट हुए।

अब आयुष्मान आनन्द ने यह जान कर कि शास्ता मेरे उत्तर से संतुष्ट हैं, भगवान को अभिवादन किया और प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब भगवान ने आयुष्मान आनन्द के चले जाने के थोड़ी देर बाद भिक्षुओं को बुलाया – "भिक्षुओ! आनन्द शैक्ष है, तो भी प्रज्ञा में इसकी बराबरी करने वाला सुलभ नहीं है।"

९. सुगंधि सुत्त

८०. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! ये तीन प्रकार की सुगंधियां हैं जिनकी सुगंध वायु के अनुकूल ही जाती है, वायु के प्रतिकूल नहीं। कौन-से तीन प्रकार की? मूल-सुगंध, सार-सुगंध तथा पुष्प-सुगंध। भंते! ये तीन प्रकार की सुगंधियां हैं जिनकी सुगंध वायु के अनुकूल ही जाती है, वायु के प्रतिकूल नहीं। भंते! क्या कोई ऐसी सुगंधि है जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती हो, प्रतिकूल भी जाती हो, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती हो?"

"आनन्द! ऐसी सुगंधि है, जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।"

"भंते! वह कौन-सी सुगंधि है जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है?"

"यहां, आनन्द! जिस गांव या निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणी-हिंसा से विरत होते हैं, चोरी से विरत होते हैं, कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत होते हैं, झूठ बोलने से विरत होते हैं, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमाद के कारणों से विरत होते हैं, कल्याणधर्मी शीलवान होते हैं, मात्सर्य रूपी मल से रहित चित्त से घर में रहते हैं – उदारता से दान देने वाला, शुद्ध मन से, उत्सर्गरत (त्यागकर प्रसन्न होने वाला) होकर, दान देने वाला, जिसके पास याचना की जा सकती है तथा जो धन का उदारता पूर्वक संविभाग करने वाला है।

"उस गांव के श्रमण-ब्राह्मण चारों दिशाओं में गुणानुवाद करते हैं – अमुक गांव में या अमुक निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणी-हिंसा से विरत होते हैं, चोरी से विरत होते हैं, कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत होते हैं, झूठ बोलने से विरत होते हैं, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमाद के कारणों से विरत होते हैं, कल्याणधर्मी, शीलवान होते हैं, मात्सर्य रूपी मल से रहित चित्त से घर में रहते हैं –उदारता से दान देने वाले, शुद्ध मन से, उत्सर्गरत (त्यागकर प्रसन्न होने वाले), जिसके पास याचना की जा सकती है तथा जो दान का संविभाग करने वाले हैं; देवता भी उस गांव या निगम का गुणानुवाद करते हैं –अमुक

गांव या निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं... संविभाग करने वाले हैं। आनन्द! यह ऐसी सुगंधि है, जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।"

"न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवायती"ति॥

["फूल की सुगंध वायु के विरुद्ध नहीं जाती, न चंदन की, न तगर की और न मल्लिका की। सत्पुरुषों की सुगंध वायु के विरुद्ध भी जाती है। सत्पुरुष की सुगंध सभी दिशाओं में जाती है।"]

१०. सहस्रचूळ लोक धातु सुत्त

८१. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पहुँचकर भगवान को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! सिखी (बुद्ध) का अभिभू नाम का श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर सहस्री-लोक धातु में अपनी आवाज पहुँचा सकता है (अर्थात, वहां स्थित हो वह जो बोलता है वह सहस्र-लोक धातु में सुनाई देता है।) भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान की आवाज कहां तक जा सकती है?"

"आनन्द! वह श्रावक है, और तथागतों का बल तो अपरिमेय है।"

दूसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! सिखी (बुद्ध) का अभिभू नाम का श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर सहस्री-लोक धातु में अपनी आवाज पहुँचा सकता है। भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान की आवाज कहां तक जा सकती है?

"आनन्द! वह श्रावक है और तथागतों का बल तो अपरिमेय है।"

तीसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! सिखी (बुद्ध) का अभिभू नाम का श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर सहस्री-लोक धातु में अपनी आवाज पहुँचा सकता है। भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान की आवाज कहां तक जा सकती है?"

"आनन्द! सुना है तूने कि एक सहस्रीचूल लोक धातु है?"

"भगवान! इसी का समय है, सुगत! इसी का समय है। आप कहें। आप से सुनकर भिक्षु ग्रहण करेंगे।"

"तो आनन्द! सुन। अच्छी तरह से मन में धारण कर। कहता हूं।"

"भंते! अच्छा" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया। भगवान ने यह कहा –

"आनन्द! जहां तक चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश फैला है, वहां तक सहस्रधा लोक हैं। उस प्रकार के सहस्र चंद्रमा होने से, सहस्र सूर्य होने से, सहस्र सुमेरु पर्वतराज होने से, सहस्र जंबुद्वीप होने से, सहस्र अपरगोयान होने से, सहस्र उत्तरकुरु होने से, सहस्र पूर्व-विदेह होने से, चार हजार महासमुद्र होने से, चार हजार महाराजागण होने से, सहस्र चातुम्महाराजिक होने से, सहस्र तावतिंस होने से, सहस्र याम होने से, सहस्र तुसित होने से, सहस्र निम्मान-रति होने से, सहस्र परनिम्मितवसवत्ती होने से, सहस्र ब्रह्मलोक होने से, आनन्द! यह लोक 'सहस्री चूल लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! जितना बड़ा क्षेत्र सहस्री चूल लोकधातु का है, वैसे हजार लोकों का एक लोक 'द्विसहस्री मध्यम लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! जितना बड़ा क्षेत्र द्विसहस्री मध्यम लोकधातु का है, वैसे हजार लोकों का एक लोक 'त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! यदि तथागत चाहें तो त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु में अपनी आवाज सुना सकते हैं अथवा और भी जहां तक चाहें।"

"भंते! भगवान त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु को अथवा जहां तक आकांक्षा करें – उस सारे प्रदेशतक अपनी आवाज कैसे सुनायेंगे?

"यहां, आनन्द! तथागत त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु को अपने प्रकाश से व्याप्त करते हैं और जब वे प्राणी उस आलोक को पहचान लें तब तथागत घोषणा कर सकते हैं, आवाज सुना सकते हैं। इस प्रकार आनन्द! तथागत आकांक्षा करें तो त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु तक अपनी आवाज सुना सकते हैं अथवा और भी जहां तक आकांक्षा करें।"

ऐसे कहे जाने पर आयुष्मान आनंद ने आयुष्मान उदायी को कहा – "वास्तव में हम लोगों के लिए यह लाभ है, सुलाभ है यह कि हमारे शास्ता इस प्रकार ऋद्धिमान एवं महानुभाव हैं!" ऐसे कहे जाने पर आयुष्मान उदायी ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –"आनन्द! तुझे इससे क्या लाभ यदि शास्ता इस प्रकार ऋद्धिमानहों अथवा ऐसे महानुभावी हों?"

ऐसा कहने पर भगवान ने आयुष्मान उदायी को यह कहा –"उदायि! ऐसा मत कहो। उदायि! ऐसा मत कहो। उदायि! यदि आनन्द बिना वीतराग हुए शरीर छोड़े तो वह इसी चित्त की प्रसन्नता के कारण देव-लोक में सात बार

देव-राज्य करे अथवा इसी जंबुद्वीप में सात बार महाराजा बने। लेकिन उदायि! आनन्द इसी जीवन में परिनिर्वाण को प्राप्त होगा।"

* * * * *

(९) ४. श्रमण वर्ग

१. श्रमण सुत्त

८२. "भिक्षुओ, ये तीन श्रमण के श्रमण-कर्तव्य हैं। कौन-से तीन? अधि (श्रेष्ठतर)-शील का पालन करना, अधि (श्रेष्ठतर)-चित्त की शिक्षा ग्रहण करना तथा अधि (श्रेष्ठतर)-प्रज्ञा की शिक्षा ग्रहण करना। भिक्षुओ, ये तीन श्रमण के श्रमण-कर्तव्य हैं। इसलिए भिक्षुओ, ठीक ऐसा ही सीखना चाहिए – श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा। भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।

२. गर्दभ सुत्त

८३. "जैसे भिक्षुओ, कोई गधा बैलों के समूह के पीछे-पीछे हो ले – 'मैं भी दान्त बैल ही हूं। मैं भी दान्त बैल ही हूं।' उसका न वैसा रंग होता है जैसा बैलों का, न वैसी आवाज़ होती है जैसी बैलों की, न वैसे पांव होते हैं जैसे बैलों के। वह बैलों के पीछे-पीछे लगा रहता है – 'मैं भी दान्त बैल ही हूं, मैं भी दान्त बैल ही हूं।'

"इसी प्रकार भिक्षुओ, यहां कोई-कोई भिक्षु भिक्षु-संघ के पीछे-पीछे चलता रहता है – 'मैं भी भिक्षु हूं, मैं भी भिक्षु हूं।' उसका न श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए वैसा प्रयास होता है जैसा अन्य भिक्षुओं का, न श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए वैसा प्रयास होता है जैसा अन्य भिक्षुओं का, न श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए वैसा प्रयास होता है जैसा अन्य भिक्षुओं का। वह केवल भिक्षु-संघ के पीछे-पीछे चलता रहता है – 'मैं भी भिक्षु हूं, मैं भी भिक्षु हूं।'

"इसलिए भिक्षुओ, ठीक ऐसा ही सीखना चाहिए – 'श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा।' भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।"

३. क्षेत्र सुत्त

८४. "भिक्षुओ, कृषक-गृहस्थके लिए ये तीन पूर्व-कृत्य हैं। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, कृषक-गृहपति सावधानी से खेत को अच्छी तरह जोतकर मिट्टी ठीक करता है, सावधानी से खेत को अच्छी तरह जोतकर मिट्टी ठीक करके समय पर बीज बोता है, समय पर बीज बोकर पानी देता भी है, बंद भी करता है। भिक्षुओ, कृषक-गृहस्थके लिए ये तीन पूर्व-कृत्य हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओं के ये तीन भिक्षु-पूर्व-कृत्य हैं। कौन-से तीन?

"श्रेष्ठतर-शील का पालन करना चाहिए, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा की भावना करनी चाहिए। भिक्षुओ, ये तीन भिक्षु के पूर्व-कृत्य हैं। इसलिए भिक्षुओ, ठीक ऐसा ही सीखना चाहिए – श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा। भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।"

४. वज्जिपुत्र सुत्त

८५. एक समय भगवान वैशाली के महावन में, कूटागारशाला में विहार करते थे। उस समय एक वज्जिपुत्र भिक्षु भगवान के पास पहुँचा... एक ओर बैठे उस वज्जिपुत्र भिक्षु ने भगवान को यह कहा –

"भंते! यह डेढ़ सौ से अधिक शिक्षा-पद प्रत्येक आधे-महीने पर पाठ किये जाते हैं। ये अधिक हैं। भंते! मैं इतने शिक्ष-पद नहीं सीख सकता।"

"भिक्षु! क्या तू तीन शिक्षा-पदों का पालन कर सकेगा – अधिशील संबंधी शिक्षा-पद, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद, अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा-पद?"

"भंते! मैं इन तीन शिक्षा-पदों को –अधिशील संबंधी शिक्षा-पद को, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद को और अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा-पद को सीख सकूंगा।"

"इसलिए भिक्षु तू ठीक ऐसे ही तीन शिक्षा-पदों को सीख – अधिशील संबंधी शिक्षा-पद को, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद को तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा पद को। हे भिक्षु! क्योंकि तू अधिशील संबंधी शिक्षा-पद का भी पालन करेगा, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद का भी पालन करेगा, तथा अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा-पद का भी पालन करेगा, इसलिए तेरे राग का भी प्रहाण हो

जायगा, द्वेष का भी प्रहाण हो जायगा, मोह का भी प्रहाण हो जायगा। इस प्रकार राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण हो जाने के कारण जो अकुशल-धर्म हैं उसे नहीं करोगे, पाप का सेवन नहीं करोगे।"

तब उस भिक्षु ने आगे चलकर अधिशील संबंधी शिक्षा का भी अभ्यास किया, अधिचित्त संबंधी शिक्षा का भी अभ्यास किया, अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा का भी अभ्यास किया। उसके अधिशील, अधिचित्त तथा अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षाओं के अभ्यास करने से उसके राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण हो गया। राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण हो जाने के कारण वह अकुशल-धर्म से बचा रहा तथा उसने पाप-कर्म नहीं किया।

५. शैक्ष सुत्त

८६. एक समय एक भिक्षु भगवान के पास गया। ...एक ओर बैठा हुआ वह भिक्षु भगवान से यह बोला –

"भंते! 'शैक्ष' 'शैक्ष' कहा जाता है। क्या होने से 'शैक्ष' होता है?

"भिक्षु, सीखता (ग्रहण करता) है, इसलिए 'शैक्ष' कहलाता है।

"क्या सीखता है?

"अधिशील संबंधी शिक्षा ग्रहण करता है, अधिचित्त संबंधी शिक्षा ग्रहण करता है तथा अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा ग्रहण करता है। इसीलिए वह भिक्षु 'शैक्ष' कहलाता है।"

"सेखस्स सिक्खमानस्स, उजुमग्गानुसारिनो।
खयस्मिं पठमं ञाणं, ततो अञ्ञा अनन्तरा॥

"ततो अञ्ञाविमुत्तस्स, ञाणं वे होति तादिनो।
अकुप्पा मे विमुत्तीति, भवसंयोजनक्खये"ति॥

["जो शिक्षार्थी है, जो शैक्ष है, जो ऋजु मार्ग पर चलने वाला है, उसे पहले क्षय के विषय में ज्ञान होता है, उसके बाद प्रज्ञा की प्राप्ति होती है, तब उस प्रज्ञाविमुक्त को निश्चित रूप से यह ज्ञान होता है कि मेरे भव-संयोजनों का क्षय हो गया और अब मुझे अचल-विमुक्ति प्राप्त हो गयी है।"]

६. शिक्षा सुत्त (प्रथम)

८७. "भिक्षुओ, यह जो डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षा-पद हैं, यह हर पखवारे पाठ किये जाते हैं, जिन्हें स्व-हित चाहने वाले कुलपुत्र सीखते हैं। भिक्षुओ, ये सभी तीन शिक्षाओं के अंतर्गत आ जाते हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं जिनके अंतर्गत ये सभी आ जाते हैं।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। तीन संयोजनों के परिक्षय हो जाने पर स्रोतापन्न होता है, चारों अपाय योनियों में जाने से मुक्त, निश्चित संबोधि-परायण।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। तीन संयोजनों के परिक्षय हो जाने पर राग, द्वेष तथा मोह के क्षीण (कम) हो जाने पर वह सकृदागामी होता है, एक ही बार और इस लोक में आकर दुःख का अंत करता है।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह पांच ओरंभागिय संयोजनों का परिक्षय कर सहज रूप से उत्पन्न होने वाला होता है, वहीं से परिनिर्वाण को प्राप्त होने वाला, वह उस लोक से लौटने वाला नहीं होता।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथासंभव पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त भी होता है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ

जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह आस्रवों का क्षय करके ,अनास्रव-चित्त की विमुक्ति को,प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है।

"भिक्षुओ, अपूर्ण रूप से पालन करने वाला (सीमित क्षेत्र में काम करने वाले –स्रोतापन्न, सकृदागामी,अनागामी) अपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, संपूर्ण रूप से पालन करने वाला (परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला अर्हत) संपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, लेकिन किसी भी रूप में शिक्षा-पदों का पालन वंध्य (निष्फल) नहीं ही होता, यह मैं कहता हूं।"

७. शिक्षा सुत्त (द्वितीय)

८८. "यह जो डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षा-पद हैं, यह हर पखवारे पाठ किये जाते हैं, जिन्हें स्व-हित चाहने वाले कुलपुत्र सीखते हैं। भिक्षुओ, ये सभी तीन शिक्षाओं के अंतर्गत आ जाते हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं जिनके अंतर्गत ये सभी आ जाते हैं।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं, उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह तीन संयोजनों का क्षय करके ,अधिक-से-अधिक सात बार जन्म ग्रहण करने वाला होता है, सात जन्म तक देव-योनि वा मनुष्य-योनि में जन्म ग्रहण करके दुःख का नाश करता है। वह तीन संयोजनों का क्षय करके 'कोलंकोल होता है, अर्थात दो या तीन जन्म ग्रहण करके दुःख का नाश करता है। वह तीन संयोजनों का क्षय करके 'एक बीजी' होता है, अर्थात एक ही बार मनुष्य-देह धारण कर दुःख का नाश करता है। तीन संयोजनों के क्षय हो जाने पर, राग, द्वेष तथा मोह के क्षीण हो जाने पर वह सकृदागामी होता है, एक ही बार और इस लोक में आकर दुःख का क्षय करता है।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि को भी परिपूर्ण करने वाला तथा प्रज्ञा का भी यथाबल...। वह जो

छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूलशिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके ऊर्ध्वगामी होता है, उच्च लोकों में जाने वाला, अकनिष्ठगामी। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके ससंस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके असंस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है, वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके उपहत्य-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है, वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके अन्तरा-परिनिर्वाण-प्राप्तहोता है।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी परिपूर्णता से...। वह जो छोटे-मोटे दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ-जीवन के अनुकूलशिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहारूकरता है।

"भिक्षुओ, अपूर्ण रूप से पालन करनेवाला अपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, संपूर्ण रूप से पालन करनेवाला संपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, लेकिन किसी भी रूप में शिक्षा-पदों का पालन वंध्य नहीं ही होता, यह मैं कहता हूं।"

८. शिक्षा सुत्त (तृतीय)

८९. "यह जो डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षा-पद हैं, यह हर पखवारे पाठ किये जाते हैं, जिन्हें स्व-हित चाहने वाले कुलपुत्र सीखते हैं। भिक्षुओ, ये सभी तीन शिक्षाओं के अंतर्गत आ जाते हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं जिनके अंतर्गत ये सभी आ जाते हैं।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी परिपूर्णता से...। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूलशिक्षा-पद हैं उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह

शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्तकर विहारकरता है।

"अथवा यदि अर्हत्व प्राप्त न हो तो वह अनागामी पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके अन्तरा-परिनिर्वाण को प्राप्त करता है। यदि वैसा भी न हो, तो वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके उपहत्य-परिनिर्वाण प्राप्त करता है... असंस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है... संस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके ऊर्ध्वगामी होता है, उच्च लोकों में जाने वाला, अकनिष्ठगामी। यदि वैसा भी न हो, तो तीन संयोजनों के क्षय हो जाने पर, राग, द्वेष तथा मोह के क्षीण हो जाने पर वह सकृदागामी होता है, एक ही बार और इस लोक में आकर दुःख का क्षय करता है। यदि वैसा भी न हो, तो तीन संयोजनों के क्षय हो जाने पर वह 'एक बीजी' होता है, अर्थात एक ही बार मनुष्य-देह धारण कर दुःख का नाश करता है। यदि वैसा भी न हो, तो तीनों संयोजनों के क्षय हो जाने पर वह 'कोलंकोल' होता है, अर्थात दो या तीन जन्म ग्रहण करके दुःख का नाश करता है। यदि वैसा भी न हो, तो तीनों संयोजनों के क्षय हो जाने पर वह अधिक-से-अधिक सात बार जन्म ग्रहण करने वाला होता है, सात जन्म तक देव-योनि वा मनुष्य-योनि में जन्म ग्रहण करके दुःख का क्षय करता है।

"भिक्षुओ, अपूर्ण रूप से पालन करने वाला अपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, संपूर्ण रूप से पालन करने वाला संपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, लेकिन किसी भी रूप में शिक्षा-पदों का पालन वंध्य नहीं ही होता, यह मैं कहता हूं।"

९. शिक्षात्रय सुत्त (प्रथम)

९०. "भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा।

"भिक्षुओ, अधिशील-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है... सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, यह है अधिशील-संबंधी शिक्षा।

"और भिक्षुओ, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिचित्त-संबंधीशिक्षा।

"और भिक्षुओ, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, 'भिक्षु यह दुःख है', इसे यथार्थ रूप से जानता है,... 'यह दुःखनिरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथार्थ रूप से जानता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा।

"भिक्षुओ, ये तीनों शिक्षाएं हैं।"

१०. शिक्षात्रय सुत्त (द्वितीय)

९१. "भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा।

"भिक्षुओ, अधिशील-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है... सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिशील-संबंधी शिक्षा।

"और, भिक्षुओ, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिचित्त-संबंधीशिक्षा।

"और, भिक्षुओ, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को, इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं।"

"अधिसीलं अधिचित्तं, अधिपञ्ञञ्च वीरियवा।
थामवा धितिमा झायी, सतो गुत्तिन्द्रियो चरे॥

"यथा पुरे तथा पच्छा, यथा पच्छा तथा पुरे।
यथा अधो तथा उद्धं, यथा उद्धं तथा अधो॥

"यथा दिवा तथा रत्तिं, यथा रत्तिं तथा दिवा।
अभिभुय्य दिसा सब्बा, अप्पमाणसमाधिना॥

"तमाहु सेखं पटिपदं, अथो संसुद्धचारियं।
तमाहु लोके सम्बुद्धं, धीरं पटिपदन्तगुं॥

"विञ्ञाणस्स निरोधेन, तण्हाक्खयविमुत्तिनो।
पज्जोतस्सेव निब्बानं, विमोक्खो होति चेतसो"ति॥

["जो प्रयत्न-शील है, जो सामर्थ्यवान है, जो धृतिमान है, जो ध्यानी है, जो स्मृतिमान है, जो संयमी है, उसे चाहिए कि वह अधिशील-संबंधी, अधिचित्त-संबंधी तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करे। जैसे पहले (तीनों शिक्षाओं का पालन करता है) वैसे ही बाद (में करे), जैसे बाद में वैसे ही पहले; उसी प्रकार जैसे (शरीर के) निचले हिस्से के प्रति (प्रतिकूल भावना रखता है) वैसे ही ऊपर के हिस्से के प्रति रखे; जैसे ऊपर के हिस्से के प्रति (प्रतिकूल भावना रखता है), वैसे ही निचले हिस्से के प्रति रखे। जैसे दिन में तीनों प्रकार की शिक्षाओं के अनुसार चलता है, वैसे ही रात में, जैसे रात में वैसे ही दिन में चले। इस प्रकार असीम समाधि द्वारा जो सभी दिशाओं को जीत लेता है वही शैक्ष-मार्गी है। जो लोक में सम्यक प्रकार शुद्धाचारी है, उसी को संबुद्ध कहते हैं, उसी को वीर कहते हैं, उसी को मार्ग के अंत तक जाने वाला कहते हैं। विज्ञान का निरोध होने पर, तृष्णा के क्षय-स्वरूप प्राप्त मुक्ति वाले को, प्रदीप के निर्वाण की तरह चित्त का मोक्ष प्राप्त होता है।"]

११. सङ्खवा सुत्त

९२. एक समय महान भिक्षु-संघ के साथ भगवान कोशल में चारिका करते-करते कोशलों के सङ्खवा नामक निगम में पहुँचे। वहां भगवान सङ्खवा में विहार करते थे, सङ्खवा नाम के कोशलों के निगम में।

उस समय काश्यपगोत्र नामक भिक्षु सङ्खवा में रहता था। वहां भगवान शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते थे, उन्हें प्रेरित करते थे, उन्हें उत्साहित करते थे, उन्हें संप्रहर्षित करते थे। उस समय जब भगवान शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण कर रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे, उन्हें उत्साहित कर रहे थे, उन्हें संप्रहर्षित कर रहे थे, तब काश्यपगोत्र भिक्षु अधीर हुआ, उसके मन में असंतोष जागा –'यह श्रमण बना-बनाकर मीठी-मीठी बातें कर रहा है'।

तब भगवान सङ्खवा में यथारुचि विहार कर राजगृह की ओर चारिका के लिए निकल पड़े। क्रमशः चारिका करते हुये राजगृह जा पहुँचे। तब भगवान राजगृह में विहार करते थे।

तब भगवान के चले जाने के थोड़ी देर बाद काश्यपगोत्र भिक्षु के मन में कौकृत्य हुआ, पश्चात्ताप हुआ –"यह मेरे अलाभ की ही बात है, लाभ की नहीं है, यह मेरा दुर्लाभ ही है, सुलाभ नहीं है जो भगवान के शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक-कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें

उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित करते समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ –'यह श्रमण बना-बनाकर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' क्यों न मैं भगवान ही के पास जाऊं, और जाकर भगवान के सामने अपना अपराध अपराध के रूप में स्वीकार करूं?"

तब काश्यपगोत्र भिक्षु शयनासन को लपेट, पात्र-चीवर ले, राजगृह पहुँचा। क्रमशः गृध्रकूट पर्वत पर, भगवान के पास पहुँचा। पहुँच कर, अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे काश्यपगोत्र भिक्षु ने भगवान से यह कहा –

"भंते! भगवान एक समय सङ्कवा में विहार कर रहे थे, सङ्कवा नाम के कोशलों के निगम में। वहां भगवान ने शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण किया, उन्हें प्रेरित किया, उन्हें उत्साहित किया तथा उन्हें संप्रहर्षित किया। उस समय जब भगवान शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण कर रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे, उन्हें उत्साहित कर रहे थे, उन्हें संप्रहर्षित कर रहे थे, उस समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ –'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' तब भगवान सङ्कवा में यथारुचि विहार करके राजगृह की ओर चारिका के लिए निकल पड़े। भंते! भगवान के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद मेरे मन में कौकृत्य हुआ, पश्चात्ताप हुआ –यह मेरे अलाभ की ही बात है, लाभ की नहीं है, यह मेरा दुर्लाभ ही है, सुलाभ नहीं है जो भगवान के शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित करते समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ –'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' क्यों न मैं भगवान के पास जाऊं, और भगवान के पास अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करूं? भंते! गलती हो गई, मेरी मूर्खता थी, मूढ़ता थी, मेरा दुष्कृत्य था, जो भगवान के शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित करते समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ –'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' भंते! भगवान मेरे अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करें ताकि मैं भविष्य में संयत रह सकूं।"

"निश्चय ही काश्यप तूने गलती की, तेरी मूर्खता थी, मूढ़ता थी, तेरा दुष्कृत्य था, जो मेरे शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित

करते समय तेरे मन में अशांति हुई, तेरे मन में असंतोष हुआ – 'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' क्योंकि काश्यप, तू गलती को गलती जानकर उसे यथोचित रूप से स्वीकार कर रहा है, हम तेरी इस भूल को स्वीकार करते हैं। काश्यप! आर्य-विनय के अनुसार इससे उन्नति ही होती है जो अपने अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करता है और भविष्य में संयत रहता है।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'स्थविर' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी न हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला न हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर प्रेरित नहीं करता है, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हैं उनकी उचित समय पर यथार्थ सच्ची प्रशंसा नहीं करता, काश्यप! इस प्रकार के स्थविर भिक्षु की मैं भी प्रशंसा नहीं करता। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगति कर सकते हैं। जो उसकी संगत करेंगे वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे, वह उनके लिए चिरकाल तक अहित, दुःख का कारण होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'बीच की आयु' का हो,... चाहे कोई भिक्षु 'नया' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी न हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला न हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित नहीं करता है, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हों उनकी उचित समय पर, यथार्थ सच्ची प्रशंसा न करता हो, काश्यप! इस प्रकार के नये भिक्षु की भी मैं प्रशंसा नहीं करता। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगत कर सकते हैं। जो उसकी संगत करेंगे, वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे, वह उनके लिए चिरकाल तक अहित, दुःख का कारण होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'स्थविर' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित करता हो, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हों उनकी उचित समय पर यथार्थ सच्ची प्रशंसा करता हो, काश्यप! इस प्रकार के स्थविर भिक्षु की मैं प्रशंसा करता हूं। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगति कर सकते हैं। जो उसकी संगति करेंगे वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे वह उनके लिए

चिरकालतक हित सुख के लिए होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकारके भिक्षु की प्रशंसा करता हूं।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'बीच की आयु' का हो... चाहे कोई भिक्षु 'नया' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी हो, शिक्षा ग्रहण करनेकी प्रशंसा करने वाला हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित करता हो, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हों उनकी उचित समय पर यथार्थ सच्ची प्रशंसा करता हो, काश्यप! इस प्रकारके नये भिक्षु की मैं प्रशंसा करता हूं। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगति कर सकते हैं। जो उसकी संगति करेंगे वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे वह उनके लिए चिरकालतक हित सुख के लिए होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा करता हूं।"

* * * * *

(१०) ५. नमक वर्ग

१. अत्यावश्यक सुत्त

९३. "भिक्षुओ, कृषक-गृहपतिके लिए ये तीन अविलंब करने योग्य कर्तव्य हैं। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, कृषक-गृहपति जल्दी-जल्दी खेत में हल जोत कर उसकी मिट्टी ठीक करता है, जल्दी-जल्दी खेत में हल जोत कर मिट्टी ठीक करके बीजों को बोता है, तथा जल्दी-जल्दी बीजों को बोकर जल्दी-जल्दी पानी देता भी है, बंद भी करता है। भिक्षुओ, ये तीन कृषक-गृहपतिके अविलंब करने योग्य कर्तव्य हैं।

"भिक्षुओ, उस कृषक-गृहपतिके पास ऐसा कोई ऋद्धि-बल या प्रताप नहीं है, जिससे वह यह कर सके कि 'आज ही मेरे धान उग जायं, कल दाने पड़ जायं और परसों पक जायं।' भिक्षुओ, समय आता है जब उस कृषक-गृहपति के वे धान उगते भी हैं, उनमें दाने पड़ते भी हैं और वे पकते भी हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, ये तीन भिक्षु के करने योग्य कर्तव्य हैं। कौन-से तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा का ग्रहण, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा का ग्रहण, तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा का ग्रहण।

"भिक्षुओ, ये तीन भिक्षु के अविलंब करने योग्य कर्तव्य हैं।

"भिक्षुओ, उस भिक्षु का ऐसा कोई ऋद्धि-बल या प्रताप नहीं होता जिससे वह कह सके कि 'आज ही उपादान-रहित हो मेरा चित्त आस्रव-विमुक्त हो जाय, कल हो जाय अथवा परसों हो जाय।' लेकिन भिक्षुओ! समय आता है जब अधिशील, अधिचित्त तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करते-करते उपादान-रहित हो चित्त आस्रव-विमुक्त हो जाता है।

"इसलिए भिक्षुओ, ठीक इस प्रकार सीखना चाहिए – 'श्रेष्ठतर शील शिक्षा के लिए हमारी तीव्र इच्छा होगी, श्रेष्ठतर चित्त-शिक्षा के लिए हमारी तीव्र इच्छा होगी, श्रेष्ठतर प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारी तीव्र इच्छा होगी।' भिक्षुओ, इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।"

२. प्रविवेक (एकांत) सुत्त

९४. "भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजक तीन प्रकार की अल्पेच्छताओं (प्रविवेकों, एकांतों) को प्रज्ञापित करते हैं। कौन-सी तीन?

"चीवर संबंधी, पिंडपात (=भोजन) संबंधी तथा शयनासन संबंधी।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का चीवर संबंधी प्रविवेक इस प्रकार है – वे सन के कपड़े भी धारण करते हैं, सन-मिश्रित कपड़े भी पहनते हैं, शव-वस्त्र (=कफन)भी पहनते हैं, कूड़े के ढेर पर फेंके हुए वस्त्र भी पहनते हैं, (वृक्ष-विशेष की) छाल के कपड़े भी पहनते हैं, अजिन (=मृग) की खाल भी पहनते हैं, अजिन (मृग) की खाल की पट्टियों से बुना वस्त्र भी पहनते हैं, कुश (घास) का बना वस्त्र भी पहनते हैं, छाल (=वाक) के वस्त्र भी पहनते हैं, फलक (=छाल) का वस्त्र भी पहनते हैं, केशों से बना कंबल भी पहनते हैं, पूंछ के बालों का बना कंबल भी पहनते हैं तथा उल्लू के परों का बना कपड़ा भी पहनते हैं। भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का चीवर संबंधी 'प्रविवेक' इस प्रकार है।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का पिंडपात (=भोजन) संबंधी 'प्रविवेक' इस प्रकार है – वे शाक खाने वाले भी होते हैं, स्यामाक खाने वाले भी होते हैं, नीवार (-धान) के खाने वाले भी होते हैं, दद्दुल (-धान) के खाने वाले भी होते हैं, हट (-शाक) के खाने वाले भी होते हैं, टूटे धान (=कणी) के खाने वाले भी होते हैं, माण्ड खाने वाले भी होते हैं, खली खाने वाले भी होते हैं, तिनके खाने वाले भी होते हैं, गोबर खाने वाले भी होते हैं, जंगल के पेड़ों से गिरे फलों तथा जड़ों को खाकर ही रहने वाले भी होते हैं।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का शयनासन संबंधी 'प्रविवेक' इस प्रकार है –अरण्य-वास, वृक्ष के तले रहना, श्मशान में रहना, जंगल में रहना, खुले आकाश के नीचे रहना, पलाल (सूखी घास) की ढेरी पर रहना, तथा फूस के घर में रहना।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजक इन तीन प्रकार के एकांतों, अल्पेच्छताओं (प्रविवेकों) को प्रज्ञापित करते हैं।

"भिक्षुओ, इस धर्मवनय में भिक्षु की ये तीन अल्पेच्छताएं हैं। कौन-सी तीन?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है, उसकी दुःशीलता का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह सम्यक-दृष्टि वाला होता है, उसकी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह क्षीणास्रव होता है, उसके आस्रवों का प्रहाण हो गया रहता है, वह उनसे 'पृथक' हो जाता है। भिक्षुओ, क्योंकि भिक्षु शीलवान होता है, उसकी दुःशीलता का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह सम्यक-दृष्टि वाला होता है, उसकी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह क्षीणास्रव होता है, उसके आस्रवों का प्रहाण हो गया रहता है, वह उनसे 'पृथक' हो जाता है – 'इसलिए वह अग्र-प्राप्त कहलाता है, सार-प्राप्त कहलाता है, शुद्ध कहलाता है, सार में प्रतिष्ठित कहलाता है।

"भिक्षुओ, जैसे किसी कृषक-गृहपति का धान का खेत तैयार हो। कृषक-गृहपति उसे जल्दी-जल्दी कटवाये, जल्दी-जल्दी कटवाकर उसे जल्दी-जल्दी इकट्ठा कराये, जल्दी-जल्दी इकट्ठा करा कर उसे जल्दी-जल्दी उठवाये, जल्दी-जल्दी उठवाकर उसका ढेर लगवाये, जल्दी-जल्दी उसका ढेर लगवाकर जल्दी-जल्दी दंवरी करवाये, जल्दी-जल्दी दंवरी कराकर जल्दी-जल्दी पुआल पृथक कराये, जल्दी-जल्दी पुआल पृथक कराकर जल्दी-जल्दी भूसा पृथक कराये, जल्दी-जल्दी भूसा पृथक कराकर जल्दी-जल्दी उसे छाज (सूप) से उड़वाये, जल्दी-जल्दी छाज से उड़वाकर जल्दी-जल्दी इकट्ठा करवाये, जल्दी-जल्दी इकट्ठा करवाकर जल्दी-जल्दी कुटवाये, जल्दी-जल्दी कुटवाकर जल्दी-जल्दी 'भूसी' पृथक कराये –ऐसा होने से भिक्षुओ, उस कृषक-गृहपति के वे चावल श्रेष्ठ होंगे, सारवान होंगे, शुद्ध होंगे तथा सार में प्रतिष्ठित होंगे।

"इसी प्रकार भिक्षुओ! क्योंकि भिक्षु शीलवान होता है, उसकी दुःशीलता का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह पृथक हो जाता है; वह सम्यक-दृष्टि वाला होता है, उसकी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह

पृथक हो जाता है; वह क्षीणास्रव होता है, उसके आस्रवों का प्रहाण हो गया रहता है, वह उनसे पृथक हो जाता है – 'इसलिए वह अग्र-प्राप्त कहलाता है, सार-प्राप्त कहलाता है, शुद्ध कहलाता है तथा सार में प्रतिष्ठित कहलाता है।'"

३. शरद सुत्त

९५. "भिक्षुओ, जैसे शरद-ऋतु में जब आकाश बादल-रहित हो साफ हो जाता है, उस समय आकाश में ऊपर उठता हुआ सूर्य, सारे आकाश के अंधेरे को दूर करके चमकता है, तपता है तथा प्रकाशित होता है, उसी प्रकार भिक्षुओ, जब आर्य-श्रावक को रज-रहित, मल-रहित धर्म-चक्षु उत्पन्न हो जाता है, तब भिक्षुओ, उसके इस ज्ञान के उत्पादन के साथ-साथ ही तीन संयोजनों का नाश हो जाता है – सत्काय-दृष्टि का, विचिकित्सा का तथा शीलव्रत परामर्श का।

"इसके बाद अभिध्या तथा व्यापाद यह दो धर्म निःशेष हो जाते हैं। तब वह कामभोगों से पृथक हो, अकुशल-धर्मों से पृथक हो प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है, जिसमें वितर्क रहते हैं, विचार रहते हैं, जो एकांतवास से उत्पन्न होता है तथा जिसमें प्रीति और सुख रहते हैं। भिक्षुओ, यदि आर्य-श्रावक उस समय मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो उस समय वह किसी ऐसे संयोजन से बँधा नहीं रहता जिस बंधन के कारण उसका पुनः इस लोक में आगमन हो।"

४. परिषद सुत्त

९६. "भिक्षुओ, परिषद के ये तीन प्रकार हैं। कौन-से तीन?

अग्र (श्रेष्ठ)-परिषद, व्यग्र (गुटों में बँटी)-परिषद, समग्र (एकजुट) -परिषद।

"भिक्षुओ, अग्र-परिषद किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, जिस परिषद में स्थविर भिक्षु अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांतसेवन के प्रति उदासीन नहीं होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं, उनके अनुयायी भी उनका अनुकरण करते हैं, वे भी अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांतसेवन के प्रति उदासीन नहीं होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं हुआ है उसे हस्तगत करने के

लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषदअग्र-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, व्यग्र परिषद कौन-सी होती है?

"यहां, भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु परस्पर झगड़ा करते हैं, कलह करते हैं, विवाद करते हैं, एक दूसरे को शब्दशूल से बींधते रहते हैं –भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषदव्यग्र परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, समग्र-परिषद कौन-सी होती है?

"यहां, भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक, बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से सम्यक प्रकार से देखते हुए विहार करते हैं –भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषद समग्र-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, जिस समय भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक, बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से सम्यक प्रकार से देखते हुए विहार करते हैं, उस समय भिक्षुओ, भिक्षु बहुत पुण्यार्जन करते हैं। उस समय भिक्षुओ! भिक्षु ब्रह्म-विहार करते हैं, जो कि उनका यह मुदिता व्याप्त चित्त से प्राप्त चित्त-विमुक्ति के साथ रहना है। प्रमुदित के मन में प्रीति पैदा होती है, प्रीति-युक्त की काया प्रश्रब्ध होती है, वह प्रश्रब्ध काया वाला सुख का अनुभव करता है, उस सुखी का चित्तसमाधिस्थ होता है।

"जैसे भिक्षुओ, ऊपर पहाड़ पर भारी वर्षा होने से वह पानी नीचे की ओर बहता हुआ पर्वत की कंदराओं, दरारों आदि को भर देता है, पर्वत की कंदरायें, दरारें आदि भर कर छोटे-छोटे गड्ढों को भर देता है, छोटे-छोटे गड्ढे भर कर बड़े-बड़े गड्ढे भर देता है, बड़े-बड़े गड्ढे भर कर छोटी-छोटी नदियां भर देता है, छोटी-छोटी नदियां भर कर बड़ी-बड़ी नदियां भर देता है, बड़ी-बड़ी नदियां भर कर समुद्र को भर देता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक, बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए विहार करते हैं, उस समय भिक्षुओ, भिक्षु बहुत पुण्यार्जन करते हैं। उस समय भिक्षुओ, भिक्षु ब्रह्म-विहार करते हैं जो कि उनका यह मुदिता व्याप्त चित्त से प्राप्त चित्त-विमुक्ति के साथ रहना है। प्रमुदित के मन में प्रीति पैदा होती है, प्रीति-युक्त की काया प्रश्रब्ध होती है, वह प्रश्रब्ध काया वाला सुख का अनुभव करता है, उस सुखी का चित्तसमाधिस्थ होता है।

"भिक्षुओ, ये तीन प्रकार की परिषदहोती हैं।"

५. आजानीय (श्रेष्ठ घोड़ा) सुत्त (प्रथम)

९७. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है। किन तीन अंगों से ?

"यहां, भिक्षुओ, राजा का श्रेष्ठ घोड़ा वर्णयुक्त होता है, बलयुक्त होता है, गतियुक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है, आतिथ्य करने योग्य होता है, दान-दक्षिणा देने योग्य होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य होता है, तथा लोक में श्रेष्ठ पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से ?

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्ण से युक्त होता है, बल से युक्त होता है तथा गति से युक्त होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्णवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है। प्रातिमोक्ष के नियमों के अनुसार संयत रहने वाला, सदाचरण की गोचर-भूमि में ही विचरने वाला, अत्यंत छोटे दोष को करने में भी भय मानने वाला; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु वर्णवानहोता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु बलवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल धर्मों का प्रहाण करने के लिए, कुशल धर्मों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह कुशल-धर्मों में सामर्थ्यवान रहता है, दृढ़-पराक्रमी रहता है, कंधे का जुआ नहीं गिराये रहता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु बलवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान कैसे होता है?

"भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथार्थ रूप से जानता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है –इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान होता है।

"भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त भिक्षु आवाहन करने योग्य है, पाहुना बनाने (अतिथ्य) योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।"

६. आजानीय सुत्त (द्वितीय)

९८. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, राजा का श्रेष्ठ घोड़ा वर्णयुक्त होता है, बलयुक्त होता है, गतियुक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है, आतिथ्य करने योग्य होता है, दान-दक्षिणा देने योग्य होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य होता है तथा लोक का पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु वर्ण से युक्त होता है, बल से युक्त होता है तथा गति से युक्त होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्णवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है। प्रातिमोक्ष के नियमों के अनुसार संयत रहने वाला, सदाचरण की ही गोचर-भूमि में विचरने वाला, अत्यंत छोटे दोष को करने में भी भय मानने वाला; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु वर्णवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु बलवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल धर्मों का प्रहाण करने के लिए, कुशल-धर्मों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नवान रहता है। वह कुशल-धर्मों के प्रति सामर्थ्यवान रहता है, दृढ़-पराक्रमी रहता है, कंधे का जुआ नहीं गिराये रहता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु बलवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु इस ओर के पांचों ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके परलोक में ही उत्पन्न होने वाला होता है, वहीं से परिनिर्वाण को प्राप्त होने वाला, उस लोक से यहां नहीं लौटने वाला।

"भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु गतिमान होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है... पुण्य-क्षेत्र होता है।"

७. आजानीय सुत्त (तृतीय)

९९. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, राजा का श्रेष्ठ घोड़ा वर्णयुक्त होता है, बलयुक्त होता है, गतियुक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है... पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु वर्ण से युक्त होता है, बल से युक्त होता है तथा गति से युक्त होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्णवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है। प्रातिमोक्ष के नियमों के अनुसार संयत रहने वाला... शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु वर्णवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु बलवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल धर्मों का प्रहाण करने के लिए... कंधे का जुआ नहीं गिराये रहता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु बलवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर, विहार करता है। भिक्षुओ, भिक्षु इस प्रकार गतिमान होता है।

"भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है... लोक का पुण्य-क्षेत्र होता है।"

८. पोत्थक (मकचीकेश का बना कपड़ा) सुत्त

१००. "भिक्षुओ, छाल का नया वस्त्र भी दुर्वर्ण होता है, खुरदरा होता है, कम मूल्य का होता है। कुछ समय काम में लाया हुआ भी छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, खुरदरा होता है, कम मूल्य का होता है। पुराना भी छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, खुरदरा होता है, कम मूल्य का होता है। भिक्षुओ, छाल के पुराने वस्त्र को या तो हांड़ी पोंछने के काम में लाते हैं या कूड़े के ढेर पर फेंक देते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, यदि नया भिक्षु भी दुःशील होता है, पापी होता है, तो मैं यह उसका दुर्वर्ण होना ही कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं तथा उसका अनुकरण करते हैं, उसके लिए दीर्घकालतक यह अहित, दुःख का कारण होता है, तो मैं यह उसका खुरदरा होना कहता हूं। भिक्षुओ! जैसे वह छाल का कपड़ा खुरदरा होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है, उनके लिए यह न महान फल देने वाला होता है, न महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका अल्प-मूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का कपड़ा कम मूल्य का होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि कोई मध्यम (जो भिक्षु न नया है और न स्थविर है) भिक्षु भी... यदि कोई स्थविर भी दुःशील होता है, पापी होता है, तो मैं यह उसका दुर्वर्ण होना ही कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं, तथा उसका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकालतक यह अहित, दुःख का कारण होता है, तो मैं यह उसका खुरदरा होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का कपड़ा खुरदरा होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन तथा ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है, उनके लिए यह न महान फल देने वाला होता है, न महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका अल्प मूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का कपड़ा कम मूल्य का होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि ऐसा स्थविर भिक्षु भी संघ के बीच बैठकर कुछ बोलता है तो भिक्षु उसे कहते हैं –'तुम्हारे मूर्ख के, अपंडित (अज्ञानी) के बोलने से क्या लाभ! तुम भी समझते हो कि तुम्हारे पास कुछ बोलने योग्य है?' वह कुपित होकर, असंतुष्ट होकर मुँह से ऐसी बात निकालता है जिससे संघ उसे उसी प्रकार फेंक देता है जैसे कूड़े के ढेर पर छाक का कपड़ा।

"भिक्षुओ, काशी का नया वस्त्र भी सुंदर होता है, मुलायम (सुखदायी) होता है, बहुमूल्य होता है। कुछ समय काम में लाया हुआ भी काशी का वस्त्र सुंदर होता है, मुलायम होता है, बहुमूल्य होता है। पुराना भी काशी का वस्त्र

सुंदर होता है, मुलायम होता है, बहुमूल्य होता है। भिक्षुओ! काशी के पुराने वस्त्र में भी या तो रत्न लपेटे जाते हैं या उसे सुगंधित पेटी में रखते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ! यदि नया भिक्षु शीलवान कल्याणधर्मी हो, तो मैं इसे उसका सौंदर्य कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह काशीका सुंदर वस्त्र, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं, तथा उसका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह हित, सुख का कारण होता है, तो मैं यह उसका सुखदायी होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे यह काशीका वस्त्र मुलायम होता है, वैसा ही मैं उस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन, ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है उनके लिए यह महान फल देने वाला होता है, महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका बहुमूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह काशीका वस्त्र बहुमूल्यवान होता है, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि कोई मध्यम आयु का भिक्षु भी... यदि कोई स्थविर भिक्षु भी शीलवान, कल्याणधर्मी होता है तो यह उसका सौंदर्य है। भिक्षुओ, जैसे वह काशी का सुंदर वस्त्र, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं तथा उनका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह हित, सुख का कारण होता है, तो मैं यह उसका सुखदायी होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे यह काशी का वस्त्र मुलायम होता है, वैसा ही मैं उस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है उनके लिए यह महान फल देने वाला होता है, महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका बहुमूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह काशीका वस्त्र बहुमूल्यवान होता है, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि इस प्रकार का स्थविर भिक्षु संघ के बीच में कुछ बोलता है तो उस समय भिक्षु कहते हैं – 'आयुष्मानो! चुप रहो! स्थविर भिक्षु धर्म तथा विनय कह रहा है।' इसलिए भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार सीखना चाहिए कि काशी के वस्त्र के समान होंगे, छाल के वस्त्र के समान नहीं। भिक्षुओ, ऐसा ही तुम्हें सीखना चाहिए।"

९. नमक सुत्त

१०१. "भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहता हो कि जैसा-जैसा भी यह आदमी कर्म करता है उसे वह सब भोगना ही होता है – तो ऐसा होने पर तो

श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करना असंभव हो जाता है, तथा दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश नहीं रहती। (लेकिन) भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि जिस प्रकार का भोग्य (वेदनीय)-कर्म वह करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है, तो ऐसा होने पर तो श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करना संभव हो जाता है, तथा दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश रहती है।

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी अभावित-काय, अभावित-शील, अभावित-चित्त तथा अभावित-प्रज्ञा वाला होता है। वह तुच्छ होता है, महत्त्वहीन, गुणविहीन और दुःखी जीवन जीने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्रभी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है, (आगे के लिए) बहुत क्या अणुमात्र भी नहीं बचा रहता?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय, भावित-शील, भावित-चित्त तथा भावित-प्रज्ञ होता है। वह तुच्छ नहीं होता है, महान होता है तथा अनंत सुख-विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है, तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, जैसे कोई आदमी नमक का एक टुकड़ा छोटे पानी के कटोरे में डाले, तो भिक्षुओ, क्या मानते हो, क्या उस छोटे पानी के कटोरे में नमक का वह टुकड़ा डालने से उसका पानी नमकीन, अपेय नहीं हो जायगा?

"हां, भंते!"

"ऐसा क्यों?"

"भंते! पानी के कटोरे में थोड़ा-सा पानी है। वह नमक का टुकड़ा डालने से नमकीन, अपेय हो ही जायगा।"

"भिक्षुओ, जैसे कोई आदमी नमक का एक टुकड़ा गंगा नदी में फेंके। तो भिक्षुओ, क्या मानते हो, क्या उस नमक के टुकड़े से उस गंगा नदी का पानी नमकीन, अपेय हो जायगा?"

"भंते! नहीं।"

"ऐसा क्यों?"

"भंते! गंगा नदी में महान जलराशि है। वह नमक के टुकड़े से नमकीन, अपेय नहीं होगी।"

"भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी अभावित-काय... थोड़े (पाप) से भी दुःख भोगने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है, (आगे के लिए) बहुत क्या, अणुमात्र भी नहीं बचा रहता। यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय... अनंत सुख विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है, (आगे के लिए) बहुत क्या अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी आधे कार्षापण[1] (के ऋण लेने) के लिए भी बंदी बना लिया जाता है, कार्षापण के लिए भी तथा सौ कार्षापणों के लिए भी बंदी बना लिया जाता है। भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी आधे कार्षापण (के ऋण लेने) के लिए भी बंदी नहीं बनाया जाता, कार्षापण के लिए भी नहीं तथा सौ कार्षापण के लिए भी नहीं।

"भिक्षुओ, कैसा आदमी आधे कार्षापण के लिए भी बंदी बना लिया जाता है, कार्षापण के लिए भी तथा सौ कार्षापणों के लिए भी बंदी बना लिया जाता है? भिक्षुओ, एक आदमी दरिद्र होता है, अल्प-सामर्थ्य वाला होता है, अल्प-भोगों वाला होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का आदमी आधे कार्षापण के

१ पालि 'कहापण' (संकार्षापण) का अर्थ तांबे का वर्गाकार सिक्का होता है।

लिए भी बंदी बना लिया जाता है, कार्षापण के लिए भी, सौ कार्षापण के लिए भी।

"भिक्षुओ, कैसा आदमी आधे कार्षापण के लिए भी बंदी नहीं बनाया जाता, कार्षापण के लिए भी नहीं, सौ कार्षापण के लिए भी नहीं? भिक्षुओ, एक आदमी धनवान होता है, महाधनवान होता है, बहुत-भोगों वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार का आदमी आधे कार्षापण के लिए भी बंदी नहीं बनाया जाता, कार्षापण के लिए भी नहीं, सौ कार्षापण के लिए भी नहीं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, एक आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, यदि कोई आदमी अभावित-काय... थोड़े (पाप) से भी दुःख भोगने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है। भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है? (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता? यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय... अनंत सुख-विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"जैसे भिक्षुओ, कोई भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई हो। वह चोरी से भेड़ ले जाने वाले किसी आदमी को पीट भी सकता है, बांध भी सकता है और मार भी डाल सकता है अथवा यथापराध दंड दे सकता है; किंतु चोरी से भेड़ ले जाने वाले ही किसी दूसरे आदमी को न तो वह पीट ही सकता है, न बांध ही सकता है, न मार ही डाल सकता है और न यथापराध दंड दे सकता है।

"भिक्षुओ, भेड़ चुराकर ले जाने वाले किस तरह के आदमी को भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई पीट भी सकता है, बांध भी सकता है, मार भी डाल सकता है अथवा यथापराध दंड भी दे सकता है?

"यहां, भिक्षुओ, एक आदमी दरिद्र होता है, अल्प-सामर्थ्य वाला होता है, अल्प-भोगों वाला होता है। ऐसे भेड़ चुराकर ले जाने वाले आदमी को भेड़

मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई पीट भी सकता है, बांध भी सकता है, मार भी डाल सकता है अथवा यथापराध दंड भी दे सकता है।

"भिक्षुओ, भेड़ चुराकर ले जाने वाले किस तरह के आदमी को भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई न पीट ही सकता है, न बांध ही सकता है, न मार ही डाल सकता है अथवा न यथापराध दंड दे सकता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई आदमी धनी होता है, महाधनवान होता है, महा भोगों वाला होता है, राजा होता है, राजा का महामात्य होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के भेड़ चुराकर ले जाने वाले आदमी को भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई न पीट ही सकता है, न बांध ही सकता है और न (जान से) मार डाल सकता है अथवा न यथापराध दंड दे सकता है। बल्कि, वह हाथ जोड़कर उसे कहता है – मालिक! या तो मेरी भेड़ दे दो या भेड़ का मूल्य दे दो!

"इसी प्रकार भिक्षुओ, एक आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, यदि कोई आदमी अभावित-काय... थोड़े (पाप) से भी दुःख भोगने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है। भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है। (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय... अनंत सुख-विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म भी इसी जीवन में फल देता है। (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहता हो कि जैसा-जैसा भी यह आदमी कर्म करता है उसे वह सब भोगना ही होता है – तो ऐसा होने पर तो श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत करना असंभव हो जाता है (तथा) दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश नहीं रहती। (लेकिन) भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि जिस प्रकार का भोग्य (=वेदनीय) कर्म वह करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है, तो ऐसा

होने पर तो श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत करना संभव हो जाता है तथा दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश रहती है।"

१०. स्वर्णकार (मिट्टी दूर करने वाला) सुत्त

१०२. "भिक्षुओ, स्वर्ण (अयस्क) में मैल होते हैं, मिट्टी, बालू, कंकड़, गिट्टी। उन्हें मिट्टी दूर करने वाला वा मिट्टी दूर करने वाले का शागिर्द द्रोणी में डालकर धोता है, अच्छी तरह धोता है, मलकर धोता है ताकि उस मैल का प्रहाण हो जाय, वह दूर हो जाय। ऐसा करने पर भी कुछ-कुछ सामान्य मैल रह ही जाते हैं महीन कंकड़ और मोटी गिट्टी... ऐसा कर चुकने पर भी कुछ-न-कुछ सूक्ष्ममैल रह ही जाते हैं जैसे महीन बालू और काली धूल...।

"तब स्वर्ण-कण ही शेष रह जाते हैं। तब सुनार या सुनार का शागिर्द उस सोने को धरिया में डालकर तपाता है, अच्छी तरह तपाता है, फिर भी शुद्ध नहीं होता है। वह स्वर्ण तपा हुआ होता है, अच्छी तरह तपा हुआ होता है, किंतु शुद्ध नहीं होता, न वह कोमल होता है, न गढ़नीय होता है, न प्रभास्वर होता है; वह काम में लाने पर टूट जाता है।

"भिक्षुओ, समय आता है जब वह सुनार अथवा सुनार का शागिर्द उस सोने को तपाता है, अच्छी तरह तपाता है और साफ भी करता है। वह सोना तपाया हुआ होता है, अच्छी तरह तपाया हुआ होता है, साफ होता है। वह कोमल होता है, गढ़नीय होता है और प्रभास्वर होता है। वह काम में लानेपर टूटता नहीं। जो-जो गहना बनाना चाहता है –चाहे करधनी हो, चाहे कुंडल हो, चाहे कंठा हो, चाहे माला हो –वह जो कुछ बनाना चाहे उसके लिए उसका उपयोग कर सकता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, श्रेष्ठतर-चित्त की प्राप्ति में लगे हुए भिक्षु के बड़े-बड़े दोष रहते हैं –कायिक दुष्चरित (दुराचरण), वाचिक दुष्चरित, (दुराचरण), मानसिक दुष्चरित, (दुराचरण)। समझदार (ज्ञानी, पंडित) भिक्षु उन्हें छोड़ता है, त्यागता है, उनका पूरी तरह प्रहाण (परित्याग) करता है। ऐसा करने पर सामान्य दोष रह जाते हैं – काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क। ज्ञानी, पंडित भिक्षु उन्हें छोड़ता है, त्यागता है, उनका पूरी तरह प्रहाण करता है। ऐसा करने पर भी सूक्ष्म दोष रह जाते हैं –जाति-संबंधी वितर्क, जनपद-संबंधी वितर्क, अनवज्ञा-संबंधी वितर्क अर्थात वैसा वितर्क जिसमें वह यह सोचता है कि दूसरे उससे घृणा न करे दूसरे उसका आदर करे। ज्ञानी, पंडित भिक्षु उन्हें छोड़ता है, त्यागता है, उनका पूरी तरह प्रहाण करता है। उसके पूरी तरह प्रहाण होने पर धर्म-वितर्क ही शेष रहते हैं। उस समय जो समाधि होती है, वह न शांत

होती है, न प्रणीत होती है, न प्रश्रब्ध होती है, न एकाग्रतायुक्त होती है। वह संस्कारोंको जैसे-तैसे रोक कर प्राप्त की हुई होती है।

"भिक्षुओ, समय आता है जब वह चित्त अपने में ही स्थिर होता है, बैठ जाता है, एकाग्र हो जाता है, समाधि-प्राप्त हो जाता है। उस समय जो समाधि होती है, वह शांत होती है, प्रणीत होती है, प्रश्रब्ध होती है, एकाग्र होती है। वह संस्कारोंको जैसे-तैसे रोक प्राप्त की हुई नहीं होती। वह अभिज्ञा के द्वारा साक्षात करने योग्य जिस-जिस धर्म की ओर मन को झुकाता है, उसे-उसे ही साक्षीभाव से प्राप्त कर लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो[१]। (पूर्वजन्मों में विशेष रूप से किये गये कुशल कर्म तथा वर्तमान जीवन में किये गये पादक ध्यान -- ये दो कारण जब-जब पूर्ण होते हैं, प्रयत्न के अनुपात में उस-उस अभिज्ञा की प्राप्ति होती है जिस-जिस ओर वह मन को झुकाता है।)

"यदि वह यह इच्छा करे कि मैं अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करूं –एक होकर भी अनेक हो जाऊं, अनेक होकर भी एक हो जाऊं, प्रकट हो जाऊं, अदृश्य हो जाऊं, दीवार के पार, प्राकार के पार, पर्वत के पार अनिरुद्ध चला जाऊं, जैसे आकाश में; पृथ्वी पर भी उतराना-डूबना करूं जैसे पानी में; पानी के भी ऊपर-ऊपर चलूं जैसे पृथ्वी पर; आकाश में भी पालथी मारकर जाऊं जैसे कोई पक्षी हो; इस प्रकार के ऋद्धि-मान, इस प्रकार के महाप्रतापी चंद्र-सूर्य को भी हाथ से छू लूं तथा ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाऊं –तो वह उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है –चाहे जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे कि मैं अलौकिक, विशुद्ध, दिव्य-श्रोत्र-धातु से दोनों प्रकार के शब्द सुनूं –दिव्य भी तथा मानुषी भी, दूर के भी, समीप के भी –तो वह उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –मैं दूसरे सत्त्वों के, दूसरे प्राणियों के चित्त को अपने चित्त से जान लूं –सराग-चित्त को सराग-चित्त जान लूं, राग-रहित चित्त को राग-रहित चित्त जान लूं, सद्वेष-चित्त को सद्वेष-चित्त जान लूं, द्वेष-रहित चित्त को द्वेष-रहित चित्त जान लूं; स-मोह चित्त को स-मोह चित्त जान लूं, वीतमोह-चित्त को वीतमोह-चित्त जान लूं; स्थिर-चित्त को स्थिर-चित्त जान लूं, चंचल-चित्त को चंचल-चित्त जान लूं; महापरिमाण (=महद्गत) चित्त को महापरिमाण-चित्त जान लूं, अ-महापरिमाण को अ-महापरिमाण जान लूं। स-उत्तर चित्त को स-उत्तर चित्त जान लूं। अनुत्तर-चित्त को अनुत्तर-चित्त जान

१ पालि के **'सति सतिआयतने'** का अर्थ 'जहां तक उसकी पहुँच हो' है (पहुँच – अपनी पारमी के अनुसार अर्थात अपने पूर्व जन्मों के हेतु तथा वर्तमान जीवन में अभिज्ञापादक ध्यान के अनुसार)।

लूं; एकाग्र-चित्त को एकाग्र-चित्त जान लूं; एकाग्रता-रहित चित्त को एकाग्रता-रहित चित्त जान लूं। विमुक्त-चित्त को विमुक्त-चित्त जान लूं, अविमुक्त-चित्त को अविमुक्त-चित्त जान लूं – तो वह उसे-उसे ही जान लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –मैं अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों को याद करूं, एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म... सौ जन्म, हजार जन्म, लाख जन्म, अनेक संवर्त-कल्प, अनेक विवर्त-कल्प, मैं अमुक जगह था, यह मेरा नाम था, यह गोत्र था, यह आहार था, इस सुख-दुःख का अनुभव किया, इतनी आयु तक जीवित रहा; वहां से च्युत होकर अमुक जगह उत्पन्न हुआ, वहां भी मेरा यह नाम था, यह गोत्र था, यह वर्ण था, यह आहार था, इस सुख-दुःख का मैंने अनुभव किया, इतनी आयु तक जीवित रहा: वहां से च्युत होकर यहां उत्पन्न हुआ, इस प्रकार विवरण-सहित, उद्देश्य-सहित अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों का स्मरण करूं –तो वह उसे-उसे ही स्मरण कर लेता है –जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –मैं अलौकिक, दिव्य, विशुद्ध चक्षु से मरते-उत्पन्न होते, अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त सत्त्वों को जानूं –सत्त्वों के कर्मानुसार सत्त्वों की उत्पत्ति को अच्छी तरह जानूं – ये प्राणी कायिक दुष्कर्म से युक्त हैं, वाचिक दुष्कर्म से युक्त हैं, मानसिक दुष्कर्म से युक्त हैं, ये आर्य (=श्रेष्ठ) जनों के निंदक हैं, मिथ्या-दृष्टि वाले हैं, मिथ्या-दृष्टि-युक्त कर्म करने वाले हैं, वे शरीर न रहने पर, मरने के बाद दुर्गति में पड़कर, पतित होकर नरक में पैदा हुए; अथवा ये प्राणी कायिक सुचरित से युक्त हैं, वाचिक सुचरित से युक्त हैं, मानसिक सुचरित से युक्त हैं, श्रेष्ठजनों के निंदक नहीं हैं, सम्यक-दृष्टि वाले हैं, सम्यक-दृष्टि के अनुसार कर्म करने वाले हैं, वे शरीर न रहने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए –इस प्रकार मैं अलौकिक, दिव्य, विशुद्ध, चक्षु से मरते-उत्पन्न होते, अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त सत्त्वों को जानूं, सत्त्वों के कर्मानुसार सत्त्वों की उत्पत्ति को अच्छी तरह जानूं – तो वह उसे-उसे ही जान लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –आस्रवों का क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्ति प्रज्ञा-विमुक्ति को, इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूं – तो वह उसे-उसेही प्राप्त कर लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।"

११. निमित्त सुत्त

१०३. "भिक्षुओ, श्रेष्ठतर चित्त की साधना में लगे हुए भिक्षु को समय-समय पर तीन बातों को मन में जगह देनी चाहिए – समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए, समय-समय-पर प्रयत्न प्रग्रह--निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए तथा समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए।

"भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल समाधि-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त आलस्य की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त उद्धतपन की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल उपेक्षा-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त आस्रवों के क्षय के लिए सम्यक रूप से समाधिस्थ न हो। क्योंकि भिक्षुओ, श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर प्रयत्न-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देता है, इसलिए वह चित्त मृदु, कोमल हो जाता है, कमनीय हो जाता है, प्रभास्वर हो जाता है तथा टूटता नहीं है। वह आस्रवों का क्षय करने के लिए सम्यक प्रकार से समाधिस्थ होता है।

"भिक्षुओ, जैसे सुनार या सुनार का शागिर्द अंगीठी तैयार करता है, अंगीठी तैयार करके अंगीठी को लीपता है, अंगीठी को लीप कर संडासी से स्वर्ण लेकर उसे अंगीठी में रखता है, तब वह बीच-बीच में उसे तपाता है, बीच-बीच में उस पर पानी के छींटे देता है, बीच-बीच में वह परीक्षण करता है। भिक्षुओ, यदि वह सुनार या सुनार का शागिर्द उस स्वर्ण को एकदम तपाता ही रहे तो निश्चय से वह स्वर्ण जल जायगा। भिक्षुओ, यदि वह सुनार या सुनार का शागिर्द उस सोने पर निरंतर पानी के छींटे ही डालता रहे तो वह स्वर्ण ठंडा पड़ जायगा। भिक्षुओ, यदि वह सुनार या सुनार का शागिर्द उस स्वर्ण का परीक्षण ही करता रहे तो संभव है कि वह स्वर्ण अच्छी तरह से बने ही नहीं। क्योंकि भिक्षुओ, सुनार या सुनार का शागिर्द उस स्वर्ण को समय-समय पर तपाता है, समय-समय पर उस पर पानी के छींटे देता है, समय-समय पर उसका परीक्षण करता है, इसलिए वह स्वर्ण मृदु, कोमल तथा कमनीय होता है, प्रभास्वर होता है। वह टूटता नहीं है। वह काम में लाये जाने के योग्य होता है।

उससे जो-जो गहना बनाना हो, चाहे करधनी हो, चाहे कुंडल हो, चाहे कंठा हो, चाहे स्वर्ण-माला हो –वह जो कुछ बनाना चाहे उसके लिए उसका उपयोग कर सकता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, श्रेष्ठ-चित्त की साधना में लगे हुए भिक्षु को समय-समय पर तीन बातों को मन में जगह देनी चाहिए –समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए, समय-समय पर प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए, समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल समाधि-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि यह चित्त आलस्य की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त उद्धतपन की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल उपेक्षा-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त आस्रवों के क्षय के लिए सम्यक रूप से समाधिस्थ न हो। क्योंकि भिक्षुओ, श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देता है, इसलिए वह चित्त मृदु, कोमल हो जाता है, कमनीय हो जाता है, प्रभास्वर हो जाता है तथा टूटता नहीं है। वह आस्रवों का क्षय करने के लिए सम्यक रूप से समाधिस्थ होता है। वह अभिज्ञा के द्वारा साक्षात करने योग्य जिस-जिस धर्म की ओर मन को झुकाता है, उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है –चाहे जहां तक उसकी पहुँच हो।

"वह यदि इच्छा करे कि मैं अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करूं... छह अभिज्ञाओं को जानूं... आस्रवों का क्षय कर... साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूं –उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है –चाहे जहां तक उसकी पहुँच हो।"

* * * * *